Chapter-3

---

तृतीय अध्याय

गांधीदर्शन : सैध्दांतिक विवेचन

प्रस्तावना

गांधी विचारधारा का प्रादुर्भाव और विकास

गांधी विचारधारा के प्रमुख पक्ष

१] आध्यात्मिक पक्ष

२] धार्मिक पक्ष

३] सामाजिक पक्ष

४] आर्थिक पक्ष

५] राजनीतिक - राष्ट्रीय पक्ष

६] कला, साहित्य और संस्कृति पक्ष

उपसंहार।

---

प्रस्तावना :

मानव सभ्यता के आरंभिक काल से ही तत्वचिंतन मानव विचार धारा का प्रमुख आकर्षण केंन्द्र रहा है। मानव जीवन एवं मानव कल्याण से संबंधित विषयों की एक निश्चित नीति एवं आचार संहिता रही है। यह एक सर्वविदित तथ्य है कि "किसी भी विचारधारा का निर्माण एक निश्चित दिशा में दीर्घकाल के पश्चात् ही संभव होता है। भारतमें भी समय-समय पर अनेक विचारधाराएँ जन्म लेती रही हैं और इनमें से बहुत सी विचारधाराएँ महाकाल के प्रवाह में विलीन भी हो गई हैं, किंतु देश के सांस्कृतिक क्रोड़ में जन्म लेनेवाली सनातन विचारधाराएँ निरंतर प्रवाहमान रही हैं।"[१] विचार-पूर्वक देखा जाय तो इन समस्त विचारधाराओं के मूलतत्व समान ही हैं, किंतु समय के अनुरूप, बदलते हुए संदर्भों में वे तत्व नवीन रूप धारण कर हमारे सामने उजागर होते हैं। तात्त्विक साम्य होते हुए भी प्रत्येक विचारधारामें कुछ ऐसी विशेषताएँ भी अंतर्निहित होती हैं, जो उसे दूसरों

---

१. गांधी विचारधारा का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव : डॉ. अरविन्द जोशी पृ. ५७

से पृथक् कर देती है। गांधी विचारधारा भी इसी सनातन परंपरा की ही एक कड़ी है। गांधीजी ने किसी नवीन दर्शन का प्रतिपादन नहीं किया है, उन्होंने तो भारतीय धर्म, संस्कृति एवं नीति के मूलतत्व सत्य एवं अहिंसा को ही तत्कालीन परिस्थिति के परिप्रेक्ष्य में समस्त मानव समाज के कल्याण के लिये नये रूप में प्रस्तुत किया है। स्वयं गांधीजीने लिखा भी है -"गांधीवाद नाम की कोई वस्तु नहीं है, न मैं अपने पीछे कोई संप्रदाय छोड़ जाना चाहता हूँ, मेरा यह दावा भी नहीं है कि मैंने किसी नये तत्व या सिध्दांत का आविष्कार किया है। मैंने तो सिर्फ जो शाश्वत सत्य है, उसीको अपने नित्य के जीवन और प्रतिदिन के प्रश्नों पर अपने ढंग से उतारने का प्रयत्न मात्र किया है। मुझे दुनिया को कोई नई चीज नहीं सिखानी है। सत्य और अहिंसा अनादिकाल से चले आये हैं ....।"[1]

अब यहाँ प्रश्न यह है कि गांधी विचारधारा क्या सत्य और अहिंसा की परिभाषा एवं स्वरूप विश्लेषण तक ही सीमित है या उसका कोई व्यापक रूप भी है? गांधी विचारधारा के मूलभूत तत्व तो सत्य एवं अहिंसा ही है और उन्हीं से अन्य तत्व उद्भूत हुए हैं। यही कारण है कि गांधीजी ने सत्य - अहिंसा पर व्यापक रूप से विचार किया है। गांधी विचारधारा केवल जीवन के एक ही पहलू का स्पर्श नहीं करती, वरन् वह जीवन के समस्त पहलुओं पर भी दृष्टि रखती है। उसकी व्यापकता पर प्रकाश डालते हुए रामनाथ सुमन ने लिखा भी है - "गांधीवाद एक व्यापक सिध्दांत समूह है जो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को छूता है। वह जीवन की एक विशेष सुसंस्कृत प्रवृत्ति का द्योतक है। उसमें राजनीति, समाजनीति, धर्मनीति, अध्यात्म सब का समावेश है और वह जीवन की एक ऐसी साधना है जिसका महत्व 'थियरी' की अपेक्षा 'आचरण' में ही अधिक है।"[2] इस प्रकार गांधीवाद जीवन का एक स्वस्थ दृष्टिकोण है।

---

१. हरिजन बंधु : २६-३-१९३६ अपने कार्यक्रम के संबंध में गांधीजीके विचार।
२. गांधीवाद की रूपरेखा : डॉ. रामनाथ सुमन - पृ. ८१

गांधीजी की इस व्यापक चिंतनधारा से केवल भारतीय चिंतन ही नहीं, वरन् संसार के अधिकांश देशों की चिंतनधाराएँ भी प्रभावित हुई हैं। भारतीय राजनीति एवं संस्कृति भी इससे आप्लावित रही है। गांधी विचारधारा का प्रभाव इतना व्यापक था कि हिन्दी साहित्य के कवि, समीक्षक एवं विव्दान भी उसके प्रभाव से अछूते न रह सके। केवल हिन्दी ही नहीं, वरन् देश की अन्य भाषाओं के साहित्य को भी इससे चिंतन की एक नई दिशा एवं अनूठी प्रेरणा मिली।

हिन्दी साहित्य के विकास में गांधी विचारधारा का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। चूँकि यह कालावधि गांधी युग के नाम से विख्यात है, अतः इस युग के अधिकांश साहित्यकार प्रत्यक्ष या परोक्ष तथा पूर्ण या आंशिक रूप में इस विचारधारा से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। साहित्य के अलावा भारतीय संस्कृति के विकास में भी गांधीजी के विचारों का महत्वपूर्ण योग रहा है। भारत के सांस्कृतिक जीवन की जो यथार्थ एवं सजीव अभिव्यक्ति बापू के जीवन व्दारा हुई है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। गांधीजी ने जीवन मूल्यों का जो निर्धारण किया है उसमें सत्य, अहिंसा, आत्मबलिदान एवं आत्मत्याग की भावना का सर्वोत्कृष्ट स्थान है। वास्तव में गांधीजी के विराट् व्यक्तित्व एवं उनकी महान् विचारधारा का अवलोकन किये बिना बीसवीं शती के पूर्वार्द्ध में साहित्य की विभिन्न विधाओं में भारतीय धर्म एवं संस्कृति तथा जनजीवन में जो महान् परिवर्तन हुए, उसे सही रूप में नहीं समझा जा सकता।

## गांधी विचारधारा का प्रादुर्भाव और विकास :

गांधीजी के विराट् व्यक्तित्व एवं उनकी जन कल्याणकारिणी विचारधारा का समग्र रूप में अध्ययन करने से पूर्व इतिहास की उस पृष्ठभूमि को समझना नितांत अनिवार्य है, जिसने भारत वर्ष के इतिहास में आलोकपूर्ण 'गांधीयुग' को जन्म दिया तथा गांधीजी को राष्ट्रनेता के रूप में प्रस्तुत कर सम्पूर्ण विश्व को मानवता का अद्भुत आदर्श प्रदान किया। यहाँ गांधीयुग की

पूर्व पीठिका के रूप में भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना और सत्याग्रह आंदोलन की तत्कालीन पृष्ठभूमि पर भी दृष्टिपात करना अनिवार्य प्रतीत होता है।

## गांधीयुग की पूर्वपीठिका :

ईसा की १९ वीं शताब्दी के मध्यकाल से ही भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना हो चुकी थी। औरंगजेब की मृत्यु के साथ ही मुगल साम्राज्य का अधःपतन और विनाश तीव्र गति से होने लगा था। अंग्रेजों ने इसका लाभ उठाया और वे भारत के शासक बन बैठे। जमींदारी प्रथा ने ग्रामीण लोगों का जीवन बरबाद कर दिया था। इस युग में राष्ट्रीय उत्थान की भावना धीरे धीरे पनपने लगी, फिर भी समाज अज्ञान, आलस्य, ईर्ष्या, द्वेष, दुराचार, विलास वासना और व्यभिचार आदि बुराइयों से सर्वथा मुक्त नहीं हो पाया था। आर्थिक दृष्टि से यह युग गरीबी, बेकारी एवं भूखमरी का युग रहा। राजकीय दृष्टि से देखें तो इस युग में देशी राजाओं और नवाबों में भी असंतोष एवं विरोध की भावना जागृत होने लगी थी। अंततोगत्वा अंग्रेजी सत्ता के पाशविक अत्याचार, शोषण एवं दमन नीति से उबकर भारतीय सेनाने अंग्रेजी शासन के विरूध्द विद्रोह करने का निश्चय करके क्रांति का शंख फूंक दिया।

## १८५७ की क्रांति :

इस प्रथम स्वातंत्र्य युध्द ने भारतीय जनता में राजनीतिक चेतना को जागृत किया। हालाँकि परिणाम की दृष्टि से देखा जाय तो भारतीयों को इसमें सफलता नहीं मिली, किंतु इस क्रांति का सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि इस क्रांति के कारण ईस्ट इन्डिया कम्पनी के राज्य का अंत हुआ।

## सांस्कृतिक आंदोलन :

इन्हीं दिनों सांस्कृतिक आंदोलन भी शुरु हुए। इन आंदोलनों के फलस्वरूप देश की मध्यम वर्ग की जनता में नया उत्साह जागृत हुआ। स्वामी दयानंद सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानंद ने हिन्दूधर्म का

पुनरुत्थान किया तथा भारतीयों को अपनी महान् अध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक धरोहरों का दर्शन कराकर लम्बी दासता के फलस्वरूप उत्पन्न राजनीतिक अवसाद और हीनभावना से मुक्त किया । मैक्समूलर जैसे विदेशी विव्दानों और आलकाट जैसे थियोसोफिस्टों ने भारतीय अध्यात्म, दर्शन एवं धर्म के अमूल्य कोष की ओर भारतीय जनता का ध्यान आकृष्ट किया। इस प्रकार प्रत्यक्ष रूप में १८५७ की क्रांति का परिणाम चाहे निराशापूर्ण रहा हो, किंतु इसके फलस्वरूप भारतीयों के जीवन में आशा और आत्मविश्वास की अपूर्व ज्योति प्रकट हुई जिसने देश को स्वतंत्र बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

जिस समय भारत अपने राजनीतिक स्वत्व के लिये संघर्षरत था, उस समय दक्षिण आफ्रिका में गांधीजी ने एक ऐसी अहिंसापूर्ण राजनीति का आविष्कार किया, जिसने भारत के भावी राजनीतिक संग्रामों को प्रभावित किया। इन्होंने दक्षिण आफ्रिका में गोरी जातियों व्दारा प्रवासी भारतीय जनता पर किये जानेवाले अन्यायों एवं अत्याचारों का अहिंसात्मक ढंग से प्रतिरोध किया और एक नयी चिंतनधारा भारतीय राजनीति को दी। इस अहिंसात्मक प्रतिरोध को सत्याग्रह का पवित्र नाम देकर गांधजी ने राजनीतिक नैतिकता का श्रीगणेश किया। चूंकि सत्याग्रह के प्रवर्तक गाधीजीका भारत से सीधा संबंध था अत: भारत में भी धीरे धीरे इसकी गूँज होने लगी और सन १९०८-९ से यहाँ यह चिंतनधारा आती हुई दिखाई दी।

भारतीय राजनीति में गांधीजी का प्रवेश :

गांधीजी राजनीति में नैतिकता को प्रतिष्ठित कर उसमें क्रांतिकारी परिवर्तन लाना चाहते थे। अपने इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये गांधीजी ने राजनीति में प्रवेश किया। स्वयं गांधीजी ने लिखा भी है - "ईश्वर साक्षात्कार के लिये मैं अपना बड़ा से बड़ा बलिदान भी दे सकता हूँ। मेरी सामाजिक, राजनैतिक, नैतिक और सेवा संबंधी सभी प्रवृत्तियाँ उसी एक लक्ष्य की ओर अभिमुख हैं। मुझे यह अनुभूति हो चुकी

है कि भगवान दुखियों के बीच में ही रहते हैं, इसलिये शोषित और संत्रस्त व्यक्तियों के लिये मेरे हृदय में इतनी करुणा है। चूंकि मैं राजनीति में हिस्सा लिये बिना इस प्रकार की सेवा नहीं कर सकता, इसलिये मैं उनके लिये इस राजनीति में हूँ। इस तरह राजनीति के माध्यम से मैं दुःखी भारत के लिये और उसके व्दारा विश्व मानवता के लिये संघर्षरत हूँ।"[1] इससे स्पष्ट हो जाता है कि गांधीजी ने मानव सेवा के निमित्त ही राजनीति में प्रवेश किया था।

गांधीजी के आगमन के पहले की राजनीतिक परिस्थितियाँ :

सन् १९१५ में जब गांधीजी भारत लौटकर आये उस समय देश के राजनीतिक आंदोलन में मंदी थी। १९०७ के सूरत कांग्रेस अधिवेशन के समय जो फूट पड़ी थी उसके कारण अत्यंत उत्साही एवं क्रांतिकारी मनोवृत्तिका युवक वर्ग कांग्रेस से अलग हो गया और इससे कांग्रेस की शक्ति क्षीण होती गई। दूसरे, देश में प्रभावशाली नेतृत्व का अभाव सा हो गया था। किंतु होमरूल आंदोलन के छिड़ते ही शिक्षित वर्ग की राजनैतिक चेतना उद्‌बुध्द हो गई और देश के राजनैतिक जीवन में जोश और उत्साह की लहर दौड़ गयी। गांधीजी ने इस राष्ट्रीय आंदोलन में हिस्सा नहीं लिया। यद्यपि सन् १९१५ से १८ तक के समय में गांधीजी ने अपने आपको भले ही राजनीति से पृथक् रखा हो, किंतु उनके विराट् व्यक्तित्व, राजनैतिक सिध्दांतों एवं नीतियों का निर्माण तो इस बीच हो ही चुका था और स्थिरता भी प्राप्त कर चुका था। युध्दकाल में राजनैतिक आंदोलन से दूर रहने के निर्णय के बावजूद भी पराधीन भारतीय जनता की जिन तकलीफों को मिटाना एकदम जरूरी हो गया था, उसके लिये वे फौरन तैयार हो गये। सबसे पहले चम्पारन के किसानों ने उन्हें सहायता के लिये पुकारा। गांधीजी तुरंत उनकी सहायतार्थ पहुँचे। गांधीजी व्दारा कृषकों के निमित्त चलाया जानेवाला यह प्रथम असहयोग आंदोलन था जिसमें उन्हें पूर्ण सफलता मिली। इसके बाद गांधीजी ने खेड़ा सत्याग्रह में भाग लिया। उन्होंने जनता को सत्याग्रह के मूलभूत सिध्दांतों और उसके व्यवहारिक पक्ष की शिक्षा दी और अहिंसा का महत्व समझाते हुए उन्हें अहिंसक लड़ाई के लिये तैयार किया। उनका कहना

---

१. यंग इण्डिया : ११-९-२४ - सं. महात्मा गांधी

था – "हिंसा का परिणाम प्राय: हिंसा होता है। बलप्रयोग से न शांति स्थापित की जा सकती है और न जीवन को सुरक्षित बनाया जा सकता है। हिंसा पर आधारित क्रांतियाँ प्रतिक्रांतियों को जन्म देती हैं क्योंकि हिंसात्मक साधनों से सत्ता हथियानेवाले आगे चलकर पैदा होनेवाली अधिकारों की माँग को हथियार के जोर से कुचलने का प्रयत्न करते हैं जिससे हिंसक प्रतिचेष्टाओं का प्रादुर्भाव होता है। इस तरह रक्तपात एवं दमन का एक अनवरत चक्र चलता रहता है। हीन और अनैतिक साधन मनुष्य को लक्ष्य से च्युत कर देते हैं, अत: ऐसे साधन ही शुभ होते हैं, जो घृणामूलक न हों और सद्भावनाओं को प्रोत्साहित करें।"[१] खेडा सत्याग्रह के अतिरिक्त गांधीजीने अहमदाबाद आंदोलन में भी भाग लिया। इस अंदोलन में भी औद्योगिक संघर्षों को समझने के लिये सत्य एवं अहिंसा का सहारा लिया गया, जिसने अभूतपूर्व चमत्कार कर दिखाया। इस प्रकार नि:शस्त्र एवं दुर्बल जनता के हाथ में सत्याग्रह का सबल अस्त्र थमाकर गांधीजी ने एक नये युग का सूत्रपात किया।

<u>रोलेट एक्ट एवं अहिंसात्मक आंदोलन</u> :

प्रथम विश्वयुध्द के प्रति गांधीजी का दृष्टिकोण देश के अन्य सभी राजनीतिक नेताओं से भिन्न था। उनका मानना था कि यदि युध्दकाल में भारत ब्रिटिश सरकार की बिना किसी शर्त रखे सहायता करेगा, तो युध्द के अंत में भारत को स्वशासन का अधिकार अवश्य मिलेगा। अपनी इसी मान्यता के कारण अन्य नेताओं का विरोध सहकर भी उन्होंने युध्दकाल में सरकार को सहायता पहुँचाई। किंतु गांधीजी की आशा के विपरीत अंग्रेजों ने उन्हें उपहार स्वरूप रोलेट एक्ट दिया। शासन तंत्र में सुधार लाने के स्थान पर यह वज्राघात राष्ट्र के लिये असहय हो गया। गांधीजी स्वयं इस रोलेट बिल को पढ़कर छटपटा उठे। उन्होंने इस बिल का विरोध करने के लिये सत्याग्रह आंदोलन का आहवान किया और गांधीजी के आहवान पर राष्ट्र ने अपने आपको पूर्णतया समर्पित कर दिया। प्रथमबार भारतीयों ने अपने आत्मिक बल से ब्रिटीश संगीनों पर विजय प्राप्त की। इस प्रकार गांधीजी के नेतृत्व में भारतीय इतिहास का नया अध्याय आरंभ हुआ और यहीं से 'गांधीयुग' का सूत्रपात भी हुआ।

१. महात्मा गांधी की जय : ले. नवलकिशोर : सं. श्रीमन्नारायण – पृ. ९३

<u>असहयोग आंदोलन</u> :

सन् १९२० का आरंभ असहयोग आंदोलन की व्यापक भूमिका को लेकर हुआ। हण्टर कमिटी रिपोर्ट प्रकाशित होते ही गांधीजीने राष्ट्र की भावी राजनीति की रूपरेखा को निश्चित कर लिया और उन्होंने नि:शस्त्र क्रांति [असहयोग आंदोलन] की राजनीति को अपनाकर सभी देशवासियों को सरकार से असहयोग करने के लिये प्रेरित किया। संपूर्ण देश में सरकारके प्रति विविध प्रकार से असहयोग प्रदर्शित किया गया। सरकारी शैक्षणिक संस्थाओं, विदेशी चीजों, अंग्रेजी अदालतों, कौंसिलों आदि का बहिष्कार किया गया। गांधीजी ने असहयोग आंदोलन में सम्मिलित होनेवाले लोगों का ध्यान नैतिक और आध्यात्मिक पक्ष की ओर आकर्षित किया। उनका कहना था -"भारत में अंग्रेजी राज्य की जड़ें मजबूत हुई थीं, लोगों की आपसी फूट, हिंसा और भ्रष्टाचार के कारण, इसलिये जनता को इन बुराईयों से मुक्त होना ही पड़ेगा। अंग्रेजों का ह्रदय परिवर्तन करने से पहले स्वयं भारतीयों को अपना ह्रदय परिवर्तन करना होगा। यही काफी नहीं है कि भारतीय जनता सरकार से निडर हो जाय, उसे साम्प्रदायिकता, अस्पृश्यता और शराब आदि मादक द्रव्यों के सेवन, बेगार आदि सभी सामाजिक बुराईयों से भी अपना पीछा छुड़ाना होगा।"[१] गांधीजी व्दारा बताये गये इस शांति पथ पर चलकर देशवासियों ने स्वतंत्रता प्राप्ति के अभियान में एक नया कदम उठाया।

<u>पूर्ण स्वराज्य की ओर</u> :

जनता को जागृत करने के बाद गांधीजीने सन् १९२४ से १९२६ तक दो वर्षों की अवधि में रचनात्मक कार्यों की ओर अपना ध्यान केंद्रित किया तथा लाहौर कांग्रेस अधिवेशन में 'पूर्ण स्वराज्य' का अंतिम ध्येय घोषित कर दिया। ८ अगस्त १९४२ को कांग्रेस समिति ने 'भारत छोड़ो' का प्रस्ताव पास किया जिसे सरकारने नजर अंदाज कर दिया। कांग्रेस के कई सदस्यों को बन्दी बना लिया गया। यह युध्द के लिये खुली चुनौती थी, अत: नेताओं की अपुनस्थिति में आंदोलन स्वयं आरंभ हो गया।

---

१. महात्मा गांधी : एक जीवनी : बी. आर. नंदा - पृ. १५५

स्वराज्य प्राप्ति : देश का विभाजन :

जब सरकार ने यह अनुभव किया कि अब अधिक समय तक भारतीयों को पराधीन बनाकर नहीं रखा जा सकता, तो वे भारत छोड़ने को तैयार हो गये। इधर 'मुस्लिम लीग' अलग रास्ते पर चल रही थी। वह किसी भी प्रकार कांग्रेस का साथ देने को तैयार नहीं थी। परिणाम स्वरूप १५ अगस्त सन् १९४७ के दिन देश को स्वतंत्रता तो मिली, किंतु देश का बँटवारा हो गया।

इस प्रकार राजनीतिक आंदोलनों पर दृष्टिपात करने से गांधीजीका राजनीतिक व्यक्तित्व हमारे सामने उजागर हो जाता है तथा उनके राजनीतिक व्यक्तित्व के साथ क्रमश: विकसित होती हुई उनकी मंगलकारिणी विचारधारा पर भी गहरा प्रभाव पड़ता है। वस्तुत: वे अपने युग के महान् चिंतक एवं दार्शनिक थे अत: राजनीतिक क्षेत्र में भी उनके प्रत्येक कार्य के मूल में उनकी विचारधारा कार्यान्वित होती रही। अब हम गांधी विचारधारा के मूलभूत सिध्दांतों का संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत कर रहे हैं।

गांधी विचारधारा के प्रमुख पक्ष :

गांधीजी का सम्पूर्ण तत्वज्ञान नीतिप्रधान था। उनका मानना था कि वर्तमान युग में मानव जीवन में जो अशांति, दुर्व्यवस्था, भग्नाशा एवं निराशा व्याप्त है, इसका मुख्य कारण है – आध्यात्मिक मूल्यों का –ह्रास। आज हमारे सम्मुख समुचित जीवन दर्शन का अभाव है। मानव जीवन का मुख्य लक्ष्य सत्य का साक्षात्कार करना है। किंतु आज मनुष्य अपने लक्ष्य से च्युत होकर भोग एवं विलास वासना को ही सर्वस्व समझ बैठा है जो कि उसके जीवन का वास्तविक साध्य नहीं है। इसी इन्द्रियलिप्सा ने ही मानव जीवन को अशांत एवं अव्यवस्थित कर दिया है। चूंकि गांधीजी मनुष्य को इस अध:पतित अवस्था से उबारना चाहते थे अत: उन्होंने भोग एवं इन्द्रियलिप्सा के स्थान पर त्याग और संयमपूर्ण नीतिप्रधान धर्म की व्यवस्था की। उनके मत से त्याग ही सुखी जीवन का रहस्य है, अत: प्रत्येक मनुष्य को निष्काम कर्मयोगी बनकर नैतिकतापूर्ण जीवन व्यतीत करना चाहिए।

गांधीजी नीति और धर्म को अन्योन्याश्रित मानते हैं। उनका मानना था कि संसार के समस्त धर्म मूलत: नैतिकता के नियम से संबध्द है, किंतु मानव ने अपने विचारों की संकीर्णता, अज्ञान एवं स्वार्थ के वशीभूत होकर इन नैतिक नियमों की उपेक्षा कर धर्म के रूप को विकृत कर दिया है। अत: यदि हमें धार्मिक विव्देषों से समाज को मुक्त करना हो तो धर्म में निहित नैतिक मूल्यों को खोजना होगा। इससे जहाँ समाज में शांति स्थापित होगी, वहीं लोगों की धार्मिक निष्ठा में भी वृध्दि होगी। सार्वभौमिक धर्म का विकास होगा तथा मानवजाति का कल्याण होगा। इस प्रकार गांधीजी ने युगधर्म के अनुरूप ही धर्म और नीति के समन्वय का प्रयत्न किया।

'सत्य' का गांधी विचारधारा में महत्वपूर्ण स्थान है। सत्य की प्राप्ति जीवन का चरम लक्ष्य है। अहिंसा सत्य प्राप्ति का साधन है और अहिंसा पालन के लिये आत्मशुध्दि अनिवार्य तत्व है। आत्मशुध्दि के लिये अस्तेय, अस्वाद, अपरिग्रह, ब्रहमचर्य एवं अभय आदि पंचव्रतों का पालन जरूरी है। इन छ: व्रतों के अतिरिक्त भारत के आधुनिक संदर्भ को ध्यान में रखकर गांधजी ने कतिपय अन्यव्रतों का भी उल्लेख किया है। उनमें कायिक श्रम, सर्वधर्म समभाव, अस्पृश्यता निवारण और स्वदेशी मुख्य हैं। गांधीजी ने सत्य और सदाचार के लिये विवेक को भी काफी महत्व दिया है। उन्होंने नैतिक जीवन के लिये सतत सावधानी और निरंतर पुरुषार्थ को भी आवश्यक माना है।

इस प्रकार गांधी विचारधारा का स्वरूप अत्यंत व्यापक है, जिसे अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से हम निम्नलिखित पक्षों में विभक्त कर सकते हैं :

१] आध्यात्मिक पक्ष

२] धार्मिक पक्ष

३] सामाजिक पक्ष

४] आर्थिक पक्ष

५] राजनीतिक तथा राष्ट्रीय पक्ष

६] कला, साहित्य और संस्कृति पक्ष।

१] <u>आध्यात्मिक पक्ष</u> :

<u>अध्यात्म से गांधीजी का आशय</u> :

'अध्यात्म' का सामान्य अर्थ है आत्मा परमात्मा संबंधी विचार या तत्वचिंतन। गांधीजी के सत्य, अहिंसा तथा आत्म शुध्दि संबंधी विचारों को ही उस संदर्भ में विशेष महत्व दिया गया है। "गांधीवाद वास्तव में आध्यात्मिक मानववाद ही है। इसके दो मूल आधार हैं सत्य और अहिंसा। यह सम्पूर्ण जगत-चर-अचर-एक सत्य से अनुप्राणित है। यह सत्य अखण्ड और एकरस है। भावनाके क्षेत्र में यही भगवान या राम है।"[१] यह सत्य शाश्वत है, सनातन है अर्थात सत्य ही मनुष्य की मंजिल है, गंतव्य है, साध्य है, इसी साध्य की प्राप्ति के लिये मनुष्य भटकता है। सत्य के प्रत्यक्ष दर्शन के लिये जीवमात्र के प्रति आत्मवत प्रेम परम आवश्यक है। इस प्रकार आत्मवत् प्रेम करने की इच्छा करनेवाला मनुष्य जीवन के किसी भी क्षेत्र से अछूता नहीं रह सकता। वे मानव सेवा व्दारा ईश्वर की अनुभूति का प्रयत्न करते दृष्टिगत होते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि "ईश्वर ऊपर स्वर्ग में नहीं, बल्कि प्रत्येक मनुष्य के ह्रदय में विद्यमान है।"[२] उनकी दृष्टिमें समस्त चेतनमात्र तत्वत: ईश्वर का ही प्रतिरूप है। इस तात्त्विक एकता के कारण ही वे मनुष्य के अतिरिक्त जीवमात्र के साथ भी अभेद का भाव अनुभव करते हैं। वे मनुष्य के समान प्राणिमात्र का भी समान अस्तित्व मानते हैं। आस्तिक के लिये यही समबुध्दि अनिवार्य है। इस समबुध्दि का व्यापक रूप अहिंसा है "अहिंसा अभावात्मक वृत्ति नहीं है, वह अत्यंत भावात्मक है, अर्थात उसका मूल तत्व घृणा और व्देष का निषेध मात्र नहीं है, उसका मूल तत्व है प्रेम। घृणा का उत्तर घृणा नहीं है, प्रेम है। हिंसा के विरूध्द हम हिंसा न करें यह भी पर्याप्त नहीं है, हमें उसका उत्तर प्रेम से देना चाहिए, तभी यह वृत्त पूरा होता है। क्योंकि घृणा या हिंसा का अभाव तो केवल अभावात्मक

---

१. सियारामशरण गुप्त : सं. डॉ. नगेन्द्र – पृ. ९५
२. यंग इण्डिया : ४-८-२७

स्थिति है जो शून्य है, और चिर-तरंगायित मानव मन शून्य अभावात्मक स्थिति में रह नहीं सकता। अतएव उसको प्रेम से भरना होगा। इस प्रकार अहिंसा का अर्थ है प्राणिमात्र के प्रति प्रेम। इस स्थिति को प्राप्त कर लेने पर मानव-मानव का भेद- समस्त जाति वर्ण, गण राष्ट्र के भेद तो मिट ही जाते हैं, इतर प्राणियों के प्रति भी समभाव उत्पन्न हो जाता है।"[१] अहिंसा भाव की प्राप्ति के लिये आत्मशुध्दि की आवश्यकता है। तप अर्थात् आत्मपीड़न और भगवद्भक्ति के माध्यम से ही आत्मशुध्दि संभव है। तप से पाप का विनाश होता है। मात्र वैयक्तिक पाप - घृणा और हिंसा का नाश करना ही पर्याप्त नहीं है, यह तो अधूरी साधना है। "अहिंसक को तो हिंसा के अस्तित्व मात्र से युध्द करना है, और इसका भी उसके पास केवल एक ही उपाय है - तप। अपने को तपाकर हम अपनी ही शुध्दि नहीं करते हैं, दूसरे की भी शुध्दि करते हैं, यही गांधीजी का हृदय परिवर्तन सिध्दांत है। और, तत्व रूप में यही गांधीदर्शन है।"[२] आत्मशुध्दि के लिये नैतिक अनुशासन आवश्यक है। अतः नैतिकता के कानून की व्यवस्था करते हुए गांधीजीने पाँच प्रतिज्ञाओंका उल्लेख किया है : सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रहमचर्य। मनुष्य को इन व्रतोंका पालन मनसा, वाचा, कर्मणा करना चाहिए।

<u>सत्य शब्द की व्याख्या</u> :

'सत्य' शब्द संस्कृत के 'अस्' धातु में 'शतृ' प्रत्यय [लट:शतृशानचाव प्रथमा समानाधिकरणे] लगाने से 'सत्' शब्द बनता है और 'सत्' शब्द में तध्दितीय 'यत्' प्रत्यय लगाने से 'सत्य' शब्द बनता है। 'सत्' का अर्थ है 'होना' या अस्तित्व और सत्य का अर्थ है 'अस्तित्व से युक्त'।

<u>सत्य शब्द का अस्तित्ववादी अर्थ</u> :

हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, पारसी आदि सभी धर्मों के लोगों में यह प्रचलित मान्यता है कि " एक ईश्वर ही है, उसके अलावा किसी चीज की

---

१. सियारामशरण गुप्त : सं. डॉ. नगेन्द्र - पृ. ९५
२. सियारामशरण गुप्त : सं. डॉ. नगेन्द्र - पृ. ९५

सत्ता नहीं है, क्योंकि एकमात्र उसीका सनातन अस्तित्व है, शेष सब नाशवान है।"[1] अतः ईश्वर को एक छोटे से शब्द से समझने के लिये उन्होंने उसे सत्य नाम दिया। गांधीजीने स्वयं अपनी आत्मकथा की प्रस्तावना में लिखा है - "वही एक सत्य है और दूसरा मिथ्या है।"[2] ईश्वर के अस्तित्व में उनका दृढ़ विश्वास है, अतः वे कहते हैं - "इस दुनिया में एक सत्य ही है, इसके अलावा और कुछ भी नहीं है।"[3] इस तरह प्रस्तुत कथन ईश्वर के सत्तामूलक या अस्तित्ववादी अर्थ को प्रकट करनेवाला है। गांधीजी सत्य रूपी परमेश्वर के पुजारी हैं। " वही प्रत्येक वस्तु में व्याप्त है, शुध्दतम एवं सारतत्व है।"[4]

कई बार ऐसा भी होता है कि जो एक के लिये सत्य होगा, वहीं दूसरे के लिये असत्य भी हो सकता है। इसका मुख्य कारण यह है कि सत्य एवं तत्व को समझने के लिये मानव मन असंख्य माध्यमों का सहारा लेता है और मानव मन का विकास सबमें एकसा नहीं होता। इसलिए यह परिणाम तो आयेगा ही। किंतु ये कठिनाइयाँ कुछ उपायों से दूर की जा सकती हैं। प्रथम तो सत्य के अन्वेषण के लिये अनाग्रहवृत्ति तथा अनेकांत दृष्टि से सत्य को समझने का प्रयत्न किया जाना चाहिए। गांधीजी अनाग्रह एवं अनेकांतवादी दृष्टि के लिये नम्रता की आवश्यकता को स्वीकार करते हैं, क्योंकि उनका मानना है कि जब तक हममें किसी प्रकार का आग्रह रहेगा, हम सत्य के निकट नहीं पहुँच सकते। अतः सत्य का यथार्थ रूप जानने के लिये हमें अपनी आकांक्षाओं, इच्छाओं, रागद्वेष आदि आग्रहवाद को भूलाकर सृष्टि के सारभूत तत्वों का यथावत् ज्ञान प्राप्त करना होगा। यदि अनेकांतवादी दृष्टि-कोण, अनाग्रहवृत्ति और नम्रता के बावजूद भी यदि सत्यासत्य के निर्णय में असुविधा हो तो हमें 'अंतरात्माकी आवाज' को ही सत्य मानना चाहिए।

---

१. गांधी - विचार - दोहन - किशोरलाल मशरूवाला - पृ. १
२. आत्मकथा - प्रस्तावना - पृ. ६
३. आत्मकथा - प्रस्तावना - पृ. ६
४. सर्वोदय तत्व दर्शन = श्री. गोपीनाथ धवन - पृ. ३८

इस विषय में उन्होंने लिखा भी है : "जो हमारी आत्मा कहे, वही सत्य है, लेकिन जो कोई इस 'अंतरात्मा की आवाज' की बात करे, उसके पूर्व उन्हें कई बातों का पालन करना चाहिए।"[१] उनमें से एक है अधिकारी विवेचन। गांधीजी 'अंत:करण की आवाज' को अंतर्नाद भी कहते हैं। इस अंतर्नाद को सुनने के लिये कठोर साधना की आवश्यकता होती है। इसीके लिये गीताने अभ्यास एवं वैराग्य दो उपाय बताये हैं। अभ्यास का अर्थ है - सत्य के लिये उत्कट अधीरता एवं वैराग्य का अर्थ है सत्य को छोड़कर अन्य सभी वस्तुओं के प्रति उदासीनता का भाव रखना।

सत्य का ज्ञानात्मक अर्थ :

गांधीजी सत्य को ज्ञान का पर्यायवाची मानते हैं। उन्होंने स्पष्ट कहा है -"जहाँ सत्य है, वहीं ज्ञान है,-शुध्द ज्ञान है। जहाँ सत्य नहीं है, वहाँ शुध्दज्ञान असंभव है। इसलिये ईश्वर नाम के साथ 'चित्' यानी 'ज्ञान' शब्द की योजना हुई है।"[२] जहाँ सत्य ज्ञान होगा, वहाँ आनंद होगा, शोक होगा ही नहीं। सत्य शाश्वत होने के कारण आनंद भी शाश्वत होता है। इसी कारण हम ईश्वर को सच्चिदानंद नाम से भी संबोधित करते हैं। "इस सत्य को जो सम्पूर्णतया समझ लेता है, उसे जगत में दूसरा कुछ भी जानने को नहीं रहता।.....क्योंकि सारा ज्ञान सत्य में समाया हुआ है। वे तो यह समझते है कि सत्य में जो न समाये वह ज्ञान नहीं है।"[3]

सत्य का मूल्यात्मक अर्थ :

गांधीजी सत्य के मूल्यात्मक अर्थ को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं "सत्य केवल सत्य नहीं है, बल्कि शिव एवं सुंदर भी होता है। अत: सत्य को प्राप्त कर लेने पर कल्याण और सौंदर्य मिल ही जाएँगे।"[४]

भारतीय परिस्थिति के अनुरूप ईश्वर शब्द का गांधीजी व्दारा अर्थ विस्तार :

गांधीजी ने ईश्वर के अर्थ को और भी अधिक व्यापक रूप देते हुए

---

१. गांधीदर्शन मीमांसा : डॉ. रामजी सिंह - पृ. ६८
२. मंगल प्रभात : गांधीजी - पृ. २
३. गांधीदर्शन मीमांसा : डॉ. रामजी सिंह - पृ. ७२
४. हरिजन : १९-२-१९३८ सं. गांधीजी

कहा है कि संसार में ईश्वर के सहस्त्र नाम प्रचलित हैं, जिनमें से एक नाम दरिद्रनारायण अथवा गरीबों केहृदय में प्रकट होनेवाला ईश्वर है। गांधीजी इन लाखों, करोड़ों गरीबों के हृदय में स्थित ईश्वर के अलावा अन्य किसी ईश्वर को नहीं मानते। इन सहस्त्रों नामों एवं रूपों में से गांधीजी सत्य को ही ईश्वर का सर्वोत्तम रूप मानते हैं। किंतु इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि वे ईश्वर को प्रेम, करुणा आदि रूपों में अंगीकार नहीं करते। गांधीजी ईश्वर को प्रेम रूप में ही देखते थे क्योंकि उनके अनुसार प्रेम ही सत्य तक पहुँचने का निकटतम मार्ग है। किंतु गांधीजी ने अनुभव किया कि प्रेम शब्द विभिन्नार्थी है। अंग्रेजी में प्रेम का पर्यायवाची शब्द Love है जो अनेक अर्थों में यहाँ तक कि मानव विकार के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है जो मनुष्यता का पतन करता है। किंतु सत्य शब्द के दो अर्थ नहीं है। ईश्वर के अस्तित्व के विषय में नास्तिकों या भौतिकवादियों को शंका हो सकती है, किंतु सत्य की शक्ति और अनिवार्यता को तो वे भी स्वीकार करते हैं। आस्तिक लोग जो ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास करते हैं, वे भी उनके स्वभाव के विषय में नेति नेति, अगोचर, अवाच्य, अवर्णनीय घोषित कर उसे बुध्दि से परे मानते हैं। सारांश यह कि "ईश्वर का वर्णन किसी भी तरह किया जाय, उसमें कठिनाइयाँ है।"[१] अत: गांधीजी ने पहले 'ईश्वर सत्य है' कहने के बाद उसमें परिवर्तन कर 'सत्य को ही ईश्वर' कहा। इस तरह गांधीजी के अनुसारसत्य और ईश्वर पर्यायवाची शब्द हो जाते हैं। इस प्रकार गांधीजी ने सत्य को ही ईश्वर बताकर तर्कशास्त्र के नियमों का पालन किया तथा एक नयी नैतिक मनोवैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक भूमिका के निर्माण व्दारा मानवता के सामने भारतीय संस्कृति के चिरंतन संदेश 'सत्यम, शिवम्, सुंदरम्' को प्रस्तुत किया और एक नूतन आध्यात्मिक चिंतन प्रणाली हमारे सामने रखी।

## सत्य का स्वरूप :

संसार कुछ अपरिवर्तनीय एवं अटल नियमों व्दारा संचालित होता है। ये नियम सत्य है। अत: कहा जा सकता है कि जो अपरिवर्तनीय है, वही सत्य है। चरम सत्य है। यह सत्य अखण्ड एवं एकरस है और सम्पूर्ण चर अचर में इसी की सत्ता व्याप्त है। उन्होंने सत्यान्वेषण की प्रक्रिया में

---

१. यंग इण्डिया : ३०-१२-१९३१ - सं. गांधीजी

विवेक को अधिक महत्व दिया है। विवेक को वे अपने भीतर की ईश्वरीय आवाज के रूप में देखते हैं। उन्होंने यंग इण्डिया में लिखा भी है -"स्वभाव से ही सत्य स्वयं प्रकाश्य है। जैसे ही अविद्या रूपी आवरण हट जाएगा, वैसे ही सत्य रूपी सूर्य पुन: प्रकाशित हो उठेगा।"[1] गांधीजी सत्यान्वेषण के लिये आत्म विश्लेषण एवं आत्मशुध्दि को अनिवार्य मानते हैं। अपने विचारों की पुष्टि के लिये उन्होंने प्राचीन हिन्दू नीति का आधार ग्रहण किया है। सत्य दर्शन के लिये काम, क्रोध, लोभ, मोह, मान और माया इन षट् रिपुओं के प्रभाव से मुक्त होना आवश्यक है। नैतिक रूप से सशक्त मनुष्य ही विवादास्पद स्थितियों में भी सत्य का दर्शन करने को समर्थ होता है।

सत्य का क्षेत्र :

"साधारणत: हम सत्य को 'सच बोलना' अर्थ तक ही सीमित मानते हैं, जबकि सत्य का क्षेत्र तो बहुत व्यापक है। उन्होंने सत्य को केवल वाणी के सत्य तक ही सीमित नहीं रखा, वरन् उनके सत्य में तो विचार और आचार का सत्य भी सम्मिलित है।"[2] गांधीजी मनसा, वाचा, कर्मणा सत्य पालन पर जोर देते हैं।

सत्य विचार वह है, जिसमें तटस्थता, निष्पक्षता एवं श्रध्दा का समावेश होता है, तथा रागव्देष या मनोविकार का कोई स्थान नहीं होता। सत्य विचार से ही सत्य वाणी और सत्याचरण का पालन संभव है। वाणी और व्यवहार में सच्चाई तो प्रेम भावना व्दारा ही प्रकट होती है। यदि हम किसी व्यक्ति को ह्रदय से स्वीकार करें, लेकिन वाणी एवं व्यवहार में उसे धोखा दे तो हमारा वह व्यवहार सत्यता से परे होगा। वास्तव में तो सत्य और प्रेम अविभाज्य है, सत्य बोलने का अर्थ है, ऐसी वाणी बोलना जो शुभ और सुंदर हो। यदि हम उपयोगी सत्य को कठोर या चोट पहुँचाने वाली वाणी में बोलेंगे तो इससे प्रतिकूल प्रतिक्रया उत्पन्न होने की अधिक

---

१. यंग इण्डिया : २७-५-१९३६ - गांधीजी.
२. अहिंसा : मोहनदास करमचंद गांधी : अहिंसाधर्म लेख - पृ. ३

संभावना रहती है। जो अपनी वाणी पर संयम नहीं रखता वह सत्यव्रत का पालन नहीं कर सकता।

जो विचार या चिंतन की दृष्टि से उपयुक्त एवं उचित हो, उसीके अनुरूप सविवेक आचरण करना ही सत्य कर्म है। इस प्रकार मन, वचन, और कर्म से सत्य का पालन करनेवाला व्यक्ति सत्य को पूर्णत: समझने के समर्थ हो सकता है।

सत्य का निकष :

सत्यासत्य के निर्णय के लिये गांधीजी ने सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य अस्तेय, अपरिग्रह, अस्वाद, अभय आदि व्रतों का पालन आवश्यक माना है। इन व्रतों का पालन करनेवाले व्यक्ति की अंतरात्मा ही सत्य का निकष अथवा कसौटी है। "अत: जिसे जो सत्य लगे उसीके अनुसार आचरण करना चाहिए। अगर उसमें कुछ भूल होगी भी तो सुधर जाएगी, क्योंकि सत्य की खोज के साथ तपश्चर्या होती है, अर्थात आत्मकष्ट सहन की बात होती है। अत: उसमें रत्तीभर भी स्वार्थ नहीं होता। ऐसी नि:स्वार्थ खोज में लगा हुआ व्यक्ति कभी भटक नही सकता, यदि कहीं गल्ती से भटक भी गया तो ठोकर खाते ही संभल जायेगा और सीधे रास्तेपर चलने लगेगा।"[१]

सत्य का परिवेश :

गांधीजी ने सत्य को व्यक्ति के अलावा धर्म, राजनीति, अर्थनीति, परिवारनीति सभी के लिये उपयोगी बताया।

सत्य की साधना को भक्ति की संज्ञा दी गई है। इस की प्राप्ति के लिये कठिन तपश्चर्या करनी पड़ती है। "सत्य की आराधना भक्ति है और भक्ति सिर हथेली पर लेकर चलने का सौदा है, अथवा वह हरि का मार्ग है जिसमें कायरता की गुंजाईश नहीं है, जिसमें हार नाम की कोई चीज है ही नहीं। वह तो मर कर जीने का मंत्र है।"[२] गांधीजी ने सत्य को ही ब्रह्म

१. अहिंसा : मोहनदास करमचंद गांधी : अहिंसाधर्म – पृ. ४
२. गांधी साहित्य : ५ धर्मनीति – पृ. ९१

मानते हुए उसे अहिंसा से भी उच्च स्थान प्रदान किया है। उन्होंने लिखा भी है "मैं सत्य के आदेश को अहिंसा के सिध्दांत से अधिक समझता हूँ। सत्य बिना, अहिंसा के प्रयोग निष्फल हैं। जिसने सत्य को पा लिया उसने मानो ईश्वर को पा लिया है। ....... ।"[1] इस प्रकार सत्य की प्राप्ति होनेपर उसे इसी देह में मुक्ति मिल जाती है।

## ईश्वर संबंधी गांधीजी के विचार :

गांधीजी ईश्वर को ऐसी रहस्यमयी शक्ति के रूप में देखते हैं जिससे संसार के हर छोटे बड़े कार्य संचालित होते हैं। यह शक्ति नियमों या कानूनों के रूप में व्यक्त होती है, जो अटल और अपरिवर्तनीय हैं। इन नियमों का भंग करने से ही संसार में विपत्तियों का सामना करना पड़ता है। इन शाश्वत नियमों के पालन व्दारा ही हम विपत्तियों से छुटकारा पा सकते हैं। वे ईश्वर को जीवंत शक्ति के रूप में देखते हैं अत: उनका कहना है -"ईश्वर एक जीवंत शक्ति है।.....वह शक्ति हमारे अंदर बसती है, किंतु उसका संबंध हमारे शरीर से नहीं होता। जो व्यक्ति उस महान् शक्ति के अस्तित्व से इन्कार करता है, वह उस अपरिमित शक्ति के प्रयोग से अपने को वंचित रखता है और क्रियाहीन नपुंसक बन जाता है। वह बिना पतवार के नाव खेता हुआ इधर-उधर भटकतारहता है और बिना कुछ प्रगति किये नष्ट हो जाता है।"[2] गांधीजीने किसी संप्रदाय विशेष के ईश्वर का उल्लेख नहीं किया, वरन् उन्होंने जन सामान्य के ह्रदय में स्थित ईश्वर की चर्चा करते हुए उन्हें सर्वव्यापी सत्ताके रूप में प्रतिष्ठित किया है।

## ईश्वर साक्षात्कार कैसे हो ?

सत्य की उपलब्धि के लिये गांधीजी ने कुछ नियमों का पालन आवश्यक माना है। ये नियम हैं - निष्काम भाव से मनुष्य ही नहीं, अपितु प्राणिमात्र की सेवा के लिये अपने को समर्पित करना। सच्ची सेवा वही है जिसका आधार

-------------

१. यंग इण्डिया : २२-७-३० को यरवदा जेलमें लिखे गये विचार से-गांधीजी।
२. हरिजन : १९-१०-१९४० - गांधीजी.

प्रेम और अहिंसा हो। अहिंसा के अतिरिक्त साधक को ब्रह्मचर्य, अस्वाद, अपरिग्रह, अस्तेय आदि व्रतों का मनसा, वाचा, कर्मणा पालन करना चाहिए। इन व्रतों के पालन से ईश्वर प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त हो जाएगा और वास्तविक यथार्थ आनंद की उपलब्धि हो जाएगी।

## सत्य का साधन - अहिंसा :

गांधीजीने सत्य के साक्षात्कार के लिये अहिंसा की साधना पर जोर दिया है। उनका कहना है "सत्यमय होने के लिये अहिंसा ही एक मार्ग है अथवा उसका [सत्य रूपी सूरज का] संपूर्ण दर्शन अहिंसा के बिना असंभव है।"[१] स्पष्ट है कि सत्य के साक्षात्कार के लिये वे अहिंसा को अनिवार्य साधन के रूप में स्वीकार करते है। गांधीजी सत्य को ही ईश्वर मानते थे और ईश्वर को पहचानने के लिये वे अहिंसा को अचूक साधन मानते थे। अहिंसा का अर्थ केवल हिंसा या व्देष का अभाव मात्र नहीं है, अहिंसा का व्यापक अर्थ प्रेम है, किंतु यह प्रेम स्वार्थ, मोह आदि बुरी भावनाओं से मुक्त होता है। स्वार्थमय प्रेम तो व्यक्ति को आत्मसीमित कर देता है। ऐसा व्यक्ति केवल अपने हित को ही देखता है। स्पष्ट है कि सत्य साधना के लिये रागव्देष से मुक्त अहिंसा ही परमधर्म है। गांधीजी ने अहिंसा को ईश्वरीय शक्ति के रूप में स्वीकार किया है।

## अहिंसा क्या है ?

उपनिषद् एवं मनुस्मृति में अहिंसा का अर्थ बहुत सामान्य रूप में ग्रहण किया गया है। इनके अनुसार अहिंसा का अर्थ है - किसी प्राणी को शारीरिक कष्ट नहीं पहुँचाना या किसी का प्राण न लेना। किंतु जैन दार्शनिकों ने अहिंसा को एक कठोर नियम का रूप दे दिया और उसकी व्याख्या इस प्रकार की - कि सभी परिस्थितियों में सभी प्राणियों के लिये मनसा, वाचा, कर्मणा, हिंसा का वर्जन। अत: जैन भिक्षुक केवल फलफूल जैसे निरामिष आहार का ही सेवन करते हैं। मनु ने भी अहिंसा सिध्दांत को अपनाया तो है, किंतु उन्होंने यज्ञ एवं भोजन के लिये पशुबलि तक की छूट दी है। आत्मरक्षा के निमित्त तो उन्होंने मनुष्य तक को मारने की छूट दी है।

---

१. आत्मकथा : व्दितीय खण्ड : पृ. ३७८

गांधीजी का अहिंसा सिध्दांत जैन एवं मनु के सिध्दांत से बहुत कुछ मेल तो खाता है लेकिन उन्होंने मनुव्दारा हिंसा के मामले में दी गई छूट को नकारा है। उनका विचार है कि हम जहाँ पहुँचना चाहते हैं, उससे कहीं आगे हमारा लक्ष्य होना चाहिए। मानव में तो अनेक दुर्बलताएँ हैं यदि हम उसे ढीला छोड़ देंगे तो फिर यह और भी नीचे की ओर चला जाएगा। अत: उन्होंने पूर्ण अहिंसा के आदर्श को ही सर्वोपरि माना। इस दृष्टि से वे जैनों के अहिंसा सिध्दांत के अधिक निकट जान पड़ते हैं। किंतु गांधीजीने जैनियों के अतिवाद को भी नकारा है। उन्होंने विशेष परिस्थितियों में अहिंसा के अंतर्गत हिंसा के लिये छूट दी है। यहाँ यह प्रश्न सहज ही उपस्थित होता है कि एक ओर तो गांधीजी ने अहिंसा के अंतर्गत जीवमात्र को मारना या कष्ट पहुँचाना वर्जित माना है, और दूसरी ओर हानिकारक जीवाणुओंको मारने की छूट दी है, अपने आदर्श के विरूध्द उनका यह आचरण कहाँ तक उचित है ? इस पर विचार करते हुए गांधीजीने अपनी आत्मकथामें लिखा है -"ज्ञात या अज्ञात रूप से स्थूल हिंसा किये बिना मनुष्य एक क्षण भी जी नहीं सकता। चाहे वह हमारा भोजन हो या जल ग्रहण या हमारा चलना और घूमना। इन सबमें कुछ न कुछ हिंसा होती ही है।"[१] परंतु यह सोचकर कि पूर्ण अहिंसा का पालन असंभव है, यदि हम अहिंसा का पालन करना ही छोड़ दें तो यह अनुचित है। "यदि अहिंसा के पुजारी की सभी क्रियाओं के मूल में करूणा रहे, यदि वह क्षुद्र से क्षुद्र जीव को यथाशक्ति कष्ट पहुँचाने से बचता रहे और उसे बचाता रहे, तथा इस प्रकार हिंसा के चक्कर से निरंतर दूर रहे तो फिर उसका विश्वास अहिंसा में अड़िग हो जाएगा।"[२] गांधीजीके अनुसार अहिंसा केवल निरामिष आहार या प्राणिवध वर्जन ही नहीं, वह तो अंतस्तल का अगाध एवं अनंत प्रेम है, जहाँ स्वार्थ के स्थान पर सहयोग और प्रतिव्दन्व्दिता के बदले प्रेम को जीवन मूल्य के रूप में स्वीकृति है। "गांधीजी की अहिंसा में किसी को न मारने का भाव तो है ही, किंतु उनकी दृष्टि में कुविचार मात्र अहिंसा है। मिथ्या भाषण, व्देष तथा किसी का बुरा चाहना

---

१. आत्मकथा : गांधीजी - पृ. ७०
२. महात्मा गांधी का दर्शन : डॉ. धीरेन्द्र मोहन दत्त : पृ. ७१

भी हिंसा है।"[1] हरिजन में गांधीजीने लिखा भी है -"हत्या न करना ही अहिंसा नहीं है। हिंसा के और भी घातक रूप हैं, जैसे कठोर वचन, बुरी भावना, क्रोध, घृणा, क्रूरता, द्वेष, अपमान, शोषण इत्यादि। संक्षेप में अहिंसा का अर्थ है संसार की किसी वस्तु को चोट न पहुँचाना - मनसा, वाचा, कर्मणा।"[2] अत: अहिंसा व्रत का पालन करनेवाले व्यक्ति के लिये इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि वह कोई ऐसा काम न करे, ऐसी वाणी न कहे तथा ऐसा विचार अपने मन में कदापि न लाये जिससे किसी दूसरे व्यक्ति का अहित हो अथवा उसे शारीरिक या मानसिक कष्ट पहुँचता हो। गांधीजी की अहिंसक पध्दति में तो किसी व्यक्ति को अपने विचारों से पराजित करना या पराजित करने का भाव मन में रखना भी हिंसा है।

अहिंसा का भावात्मक अर्थ :

गांधीजी की अहिंसा में दूसरों को न मारने का भाव तो है ही, किंतु उसमें विपक्षी को अधिक से अधिक प्रेम करने का भाव भी अंतर्निहित है। उन्होंने अहिंसा को 'सक्रिय प्रेम और व्यापक करुणा' की संज्ञा दी है। इस दृष्टि से अहिंसा के साथ क्रोध, प्रतिहिंसा, घृणा आदि की भावनाओं का मेल नहीं बैठता, क्योंकि वे अप्रकट रूप में हिंसा ही है। "संपूर्ण अहिंसा में द्वेष का सम्पूर्ण अभाव है। इसीलिये गांधीजी के असहयोग आंदोलन के मूल में जिनके प्रति असहयोग किया जाता था, उनके लिये घृणा नहीं, बल्कि प्रेम ही था।"[3] गांधीजी की अहिंसा में अपने विरोधी से भी प्रेमपूर्ण व्यवहार करने का उपदेश दिया गया है। किंतु शत्रु या विदेशी से प्रेमपूर्ण व्यवहार करने का यह आशय कदापि नहीं है कि हम उनके अन्याय, उनकी हिंसा एवं बुराई से मेल कर लें। अहिंसा का आशय तो केवल इतना ही है कि हम विपक्षी की बुराई या दुष्प्रवृत्ति को घृणा या धुतकार से दूर करने के बजाय प्रेमपूर्वक दूर करने का प्रयत्न करें। इस संबंध में उनकी मान्यता है कि व्यक्ति

---

१. अहिंसा : मो.क. गांधी : अहिंसाधर्म लेख से - पृ. ६
२. हरिजन : ७-९-१९३५
३. यंग इण्डिया : ६|८|१९२५ सं. गांधीजी.

जो दूसरों को देगा वही उसको प्राप्त होगा। इस दशा में यदि कोई व्यक्ति हिंसा करता है, तो उसे हिंसक प्रत्युत्तर ही मिलेगा किंतु यदि व्यक्ति हिंसा का उत्तर प्रेम से देगा, तो उसे प्रेम ही प्राप्त हो सकेगा। इस संबंध में उन्होंने यहाँ तक कहा है वही व्यक्ति सच्चा अहिंसक है जो अपनी हत्या होते समय भी अपने हत्यारे के प्रति क्रोध नहीं करता है अपितु ईश्वर से उसे क्षमा करने को कहता है। उनकी अहिंसा सच्चे अर्थों में उच्चकोटि की सहिष्णुता है। उन्होंने क्षमा, त्याग एवं आत्म बलिदान भावना पर बल देते हुए लिखा भी है - "अहिंसा क्षमा की चरम सीमा है।"[१] अहिंसा पालन के लिये उन्होंने नम्रता को भी अनिवार्य माना है। अहिंसा में तिरस्कार या घृणा के लिये कोई स्थान नहीं। अहिंसा और घृणा परस्पर विरोधी है। अत: नम्रता के बिना अहिंसा का पालन असंभव है। यही कारण है कि वे तिरस्कार एवं अहंभाव को त्यागकर प्रेम तथा विनम्रता को अपनाने की सलाह देते है। संक्षेपमें, गांधीजी की अहिंसा अपने पूर्ण रूप में 'हार्मलेसनेस' है। इस आत्यंतिक अहिंसा का पूर्ण पालन शरीर के रहते हुए संभव नहीं है, पूर्ण अहिंसा तो देह मुक्ति पर ही संभव है। किंतु जब तक शरीर है, मनुष्य को कर्मरत तो रहना ही पड़ेगा, केवल उसे इस बात की सावधानी बरतनी होगी कि अपने प्रत्येक कार्य को करते हुए भी यथासंभव हिंसा कम से कम हो तथा उसका मन सर्वथा द्वेष रहित बना रहे।

अहिंसा के लिये गांधीजी ने अभय के महत्त्व को भी स्वीकार किया है। उनका मानना है कि मृत्यु का भय ही मनुष्य को अन्याय सहते रहने पर बाध्य करता है। इस प्रकार का भय जहाँ मनुष्य को कायर बना देता है, वहीं मूक बनकर अन्याय सहन करने से अन्याय करनेवाले की हिम्मत को बढ़ावा मिलता है। अत: यदि मनुष्य मृत्यु भय पर विजय पाले तो वह प्रतिपक्षी को हानि पहुँचाये बिना भी स्वयं मरकर या मरण के लिये तैयार होकर अन्यायका निराकरण कर सकता है।

---

१. यंग इण्डिया : ४ नवम्बर १९२६ सं. गांधीजी

अहिंसा का मनोविज्ञान :

सामान्य स्थिति में मनुष्य स्वयं शांतिपूर्वक जीवन जीना चाहता है और दूसरों को भी जीने देना चाहता है। किंतु मनुष्य की अंतर्निहित दुर्बलता ही उसे हिंसक प्रवृत्ति की ओर प्रेरित करती है। निर्भय एवं सशक्त ह्रदयवाला व्यक्ति सब को प्यार करता है। अहिंसक व्यक्ति हिंसा का प्रत्युत्तर भी अहिंसा से ही देगा, जिससे विपक्षी के मन में झुंझलाहट उत्पन्न होगी, किंतु बाद में शांतिपूर्वक सोचने पर उसे अपनी गल्ती का अहसास होगा और वह अपने हिंसक कार्य पर ग्लानि का अनुभव करेगा। उसका पछतावा ही उसका ह्रदय परिवर्तन करता है। इस प्रकार अहिंसा व्दारा वैरभाव का शमन व विपक्षी के ह्रदय का परिवर्तन होता है।

अहिंसक वीरता :

आत्मबल एवं निर्भयता के बिना अहिंसा पालन असंभव है। सच्ची अहिंसा में प्रतिहिंसा के स्थान पर क्षमा की भावना निहित होती है। और "आत्मबल संयुक्त" शक्तिमान व्यक्ति ही क्षमा कर सकता है। इस प्रकार अहिंसा के लिये साहस एवं वीरता अपेक्षित है। गांधीजी दुर्बल की क्षमा को कायरता मानते हैं और वे कायरता के घोर विरोधी हैं। उनकी दृष्टि से कायरता एक प्रकार की भीषण हिंसा है। अत: उन्होंने भय या कायरता से दब जाने के स्थान पर तलवार उठाने की छूट दी है। क्योंकि जो मारकर मरता है, उसमें भी मरण का भय तो एक सीमा तक नष्ट हो ही चुका रहा है। आत्मकष्ट सहन का यह अर्थ कदापि नहीं कि इस [आत्मकष्ट सहन की] क्रिया के दौरान हम दुष्टता या अनुचित अन्यायों के सामने कायरता पूर्वक आत्मसमर्पण करें। दुष्टता एवं अनुचित अन्यायों का हमें अहिंसक मार्ग से डटकर विरोध करना चाहिए। इस प्रकार अहिंसा आत्मबलिदान का मार्ग है। यह सबल का अस्त्र और साहसी का साधन है। इसमें निष्क्रियता या कायरता के लिये कोई गुंजाईश नहीं। कायर मनुष्य भी हिंसा का अपराधी है क्योंकि युध्द के मैदान से पीठ दिखाकर भागते समय वह मानसिक हिंसा

तो करता ही है, वह अपने विरोधी को मन से मारना तो चाहता है, किंतु साहस एवं शरीर बल के अभाव में वह अपने विचारों को कार्य रूप नहीं दे सकता और विवशतावश उसे पलायन करना पड़ता है। इस प्रकार मानसिक रूप में हिंसा का विचार उसे एक तरह से हिंसक तो बना ही देता है। गांधीजी ने कहा भी है -"यदि कायरता और हिंसा में से किसी एक को चुनना हो तो मैं हिंसा को ही पसंद करूँगा। दूसरे को न मारकर स्वयं ही मरने का जो धीरतापूर्ण साहस है, मैं उसी की साधना करता हूँ, लेकिन जिसमें ऐसा साहस नहीं हैं, वह भी भागते हुए लज्जाजनक मृत्यु का वरण न करे, मैं तो कहूँगा, बल्कि वह मरने के साथ साथ मारने की भी कोशिश करे क्योंकि जो इस तरह भागता है, वह अपने मन पर अन्याय करता है। वह इसलिये भागता है कि मारते मारते मरने का साहस उसमें नहीं है। एक समूची जाति के निस्तेज होने की अपेक्षा मैं हिंसा को हजार बार अच्छा समझूँगा। भारत स्वयं ही अपने अपमान का पंगु साक्षी बनकर बैठा रहे, इसके बदले अगर हाथों में हथियार उठा लेने को तैयार हो तो इसे मैं अधिक पसंद करूँगा।"[१] बेशक गांधीजी ने साथ में यह भी कहा था कि दण्ड की अपेक्षा क्षमा अधिक शक्तिशाली है, लेकिन क्षमा तभी सार्थक है, जब शक्ति होते हुए भी दण्ड नहीं दिया जाता। कमजोर की क्षमा बेमानी है। वास्तविक शक्ति शरीर बल में नहीं होती, वह तो आत्मबल में होती है। अन्यायी के प्रति आत्मसमर्पण वास्तविक अहिंसा नहीं है। गांधीजी ने गुण्डों या बदमाशों से आत्मरक्षा या शील रक्षा के लिये हिंसा की छूट दी है, क्योंकि वे शीलरक्षा को आवश्यक समझते हैं।

<u>हिंसा अहिंसा का निर्णय कैसे किया जाय ?</u>

हिंसा अहिंसा का निर्णय इस आधार पर किया जा सकता है कि किस प्रकार की मानसिक अवस्था में, किस भावना से प्रेरित होकर मारनेवाले ने हिंसा जैसा जघन्य अपराध किया है। वध करनेवाले की मानसिक स्थिति एवं भावना ही हमें इस निर्णय पर पहुँचाती है कि उसका कार्य हिंसायुक्त है

---

१. महात्मा गांधी : जीवन और दर्शन : रोमांरोलां : अनुवादक प्रफुल्ल चंद्र ओझा- पृ. ३२

अथवा नहीं। शुभ हेतु को लेकर निष्काम भावना से किया गया हिंसक कार्य अहिंसा ही है। किंतु कायरता को लेकर धारण की गई अहिंसा धर्म नहीं पाप है। उदाहरण के लिये चक्रवर्ती अशोक स्वभाव से वीर एवं साहसी था। उसने दिग्विजय के बाद सोचा कि साम्राज्य स्थापना के लिये की गई हिंसा पाप है, इसलिये उसने क्षमाधर्म को जीवन में प्रश्रय दिया। चूंकि उसकी क्षमा वीर की क्षमा थी, अत: वह सार्थक सिध्द हुई, किंतु उसी के पौत्र ने अपनी कायरता की ओट में क्षमा धर्म को अपनाया। चूंकि शौर्य के अभाव में उसने क्षमा धर्म को ग्रहण किया था अत: उसके व्दारा अपनायी जानेवाली अहिंसा बेमानी थी।

अहिंसा का समाजशास्त्र :

गांधीजी ने अहिंसा को धार्मिक एवं नैतिक क्षेत्रों के अलावा राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्र में भी प्रतिष्ठित कराया। उनका कहना था कि "अहिंसा का अर्थ यदि प्रेम होता है तो फिर वहाँ शोषण और उत्पीड़न का स्थान नहीं होगा। प्रेम और उत्पीड़न, प्रेम और विषमता, प्रेम और शोषण साथ साथ नहीं चल सकते।"[१] स्पष्ट है कि गांधीजी ने शोषण को भी हत्या के समान ही हिंसा माना है और शोषण-विहीन ग्राम स्वराज्य एवं समाज की व्यवस्था का प्रयत्न किया है। गांधीजी अहिंसक समाज की स्थापना के लिये अहिंसक अर्थनीति एवं अहिंसक राजनीति की अनिवार्यता को भी स्वीकार करते हैं।

अहिंसक राज्य और समाज में दण्डनीति का स्वरूप :

यहाँ यह प्रश्न सहज ही हमारे मस्तिष्क में उपस्थित होता है कि दण्ड विधान तो हिंसा पर आधारित है, तब हिंसा से मुक्ति किस प्रकार संभव हो सकती है। इस संबंध में गांधीजीने अहिंसक राज्य की कल्पना करते हुए पुलिस एवं सेना अधिकारियों को कुछ छूट दी है। वे कहते हैं कि अहिंसक राज्य में पुलिस और सेना को स्थान देने से अहिंसा के सिध्दांत की अपूर्णता सिध्द होती है, किंतु यहाँ पर पुलिस शासक और स्वामी के रूप में न रहकर जनता के सेवक के रूप में कार्य करेगी। पुलिस अस्त्रशस्त्रों का प्रयोग नहीं करेगी, दण्डनीति का अनुसरण नहीं करेगी, अपितु समाज की अशांति और

१. गांधीदर्शन मिमांसा : डॉ. रामजी सिंह : पृ. ८६

अव्यवस्था को जनता के सहयोग से सद्भावना व्दारा दूर करेगी। गांधीजी के अहिंसक राज्य की अवधारणा में जेल का स्थान अवश्य है किंतु इन जेलों में रहनेवाले मुजरिमों को यातना एवं पीड़ा देने के स्थान पर उन्हें अपने चरित्र को सुधारने एवं चरित्र का निर्माण करने का मौका दिया जायगा। इस प्रकार जेल में रहकर अपराधी अपनी अपराध वृत्ति को और अधिक बढ़ाने की अपेक्षा अपने हृदय में परिवर्तन करेंगे। अपने कलुषित अतीत को विस्मृत कर उज्वल भविष्य के निर्माण का प्रयत्न करेंगे। जहाँ तक सेना का संबंध है गांधीजी उसे स्वीकार करते हैं किंतु उन्हें सेना का विध्वंसक एवं विनाशक रूप स्वीकार नहीं। वे केवल शांति स्थापना के निमित्त ही उसे स्वीकार करते हैं। यह सेना किसी देश पर सामने चढ़कर आक्रमण नहीं करेगी और न ही दमन का मार्ग अख्तियार करेगी। किंतु विदेशी आक्रमण होने पर देश के रक्षण का प्रयत्न करेगी। यह सेना शस्त्र का प्रयोग यथासंभव कम से कम करेगी। " ये सेवा, प्रेम और दया से शत्रु का हृदय जीतेगी।"[1]

गांधीजी सशस्त्र युध्द के पक्षपाती नहीं थे, क्योंकि वे शस्त्र बल को पशुबल मानते हैं। उनके अनुसार मनुष्य के लिये तो सबसे अच्छा सिध्दांत यही है कि वह अपनी प्रेम शक्ति तथा आत्मशक्ति व्दारा विपक्षी का हृदय जीते। कभी कभी मनुष्य आत्म विस्मृत होकर पशुओं के समान हिंसक व्यवहार करने लगता है, इस स्थिति में उसके लिये आवश्यक हो जाता है कि वह अपने आत्मिक स्वरूप की चेतना को विकसित करें, अन्यथा वह बुध्दिमान पशुमात्र रह जाएगा, वह मनुष्य कहलाने योग्य नहीं रहेगा।

<u>जनतंत्र एवं अहिंसा</u> :

जनतंत्र अहिंसा का व्यवहार धर्म है, जो प्रशासन के क्षेत्र में व्यक्त होता है। प्रजातंत्र का आधार समता और स्वतंत्रता की भावना है। इस तरह जनतंत्र एवं अहिंसा परस्पर अन्योन्याश्रित है। पारस्परिक भय, अविश्वास एवं हिंसापूर्ण वातावरण में अहिंसक जनतंत्र की स्थिति संभव नहीं।

---

१. गांधी धर्म और समाज : शम्भूरत्न त्रिपाठी - पृ. ४५

पारस्परिक सद्भावना एवं शांतिपूर्ण वातावरण के अभाव में जनता एवं शासन तंत्र के बीच पारस्परिक विचार-विनिमय संभव नहीं, जो जनतंत्र का मूलाधार है। अतः जनतांत्रिक प्रक्रिया के सामान्य संचालन के लिये भी अहिंसा की अनिवार्यता को वे स्वीकार करते हैं। भारत के अस्तित्व के लिये वे अहिंसा को अनिवार्य मानते हैं। उनका मानना है कि भारत का भविष्य रक्त रंजित मार्ग पर नहीं है। उसका भविष्य तो सरल धार्मिक जीवन द्वारा प्राप्त शांति के अहिंसक रास्ते पर चलने में ही है। भारत के सामने इस समय अपनी आत्मा को खोने का खतरा है और बिना आत्मा के उसका जीवित रहना असंभव है। अतः हमें रक्त रंजित क्रांति से बचकर अहिंसक साधनों से शांति स्थापना का प्रयत्न करना चाहिए। गांधीजी के अनुसार अहिंसा तभी संभव है जब हम घृणा, द्वेष आदि दुर्भावनाओं को प्रेम में, भय को विश्वास में, अधिकार को कर्तव्य में और शोषण को सेवा में परिणत कर दें।

गांधीजी का अहिंसक समाज :

अहिंसक समाज की स्थापना के लिये प्रथम अनिवार्यता है आवश्यकताओं पर नियंत्रण। ऐसा समाज हिंसा के घातक वार का शिकार बनता है जो अपनी आवश्यकताओं को नियंत्रित न कर उसे उत्तरोत्तर बढ़ाता जाता है। धार्मिक मतभेद, व्यक्तिगत स्वत्वों और कर्तव्यों को लेकर भी कई बार झगड़ा होता है। गांधीजी इन सभी बुराईयों से समाज को मुक्त करना चाहते हैं।

अहिंसा और हिंसा संबंधी भेद :

हिंसा के मूलमें अशांति, अभाव, बैर, कलह और विग्रह का साम्राज्य रहता है जबकि अहिंसा से शांति और समृध्दि को प्राप्त किया जा सकता है। हिंसा एक ऐसा मानसिक रोग है, जिससे स्वास्थ्य तो बिगड़ता ही है, साथ ही आधि भौतिक और आध्यात्मिक उन्नति का

मार्ग भी अवरूध्द हो जाता है। नैतिकता एवं आध्यात्मिकता से वंचित मनुष्य निरंतर पतन की ओर अग्रसर होता जाता है। अहिंसा आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग प्रशस्त करती है। अत: वे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अहिंसा पर जोर देते है।

अहिंसा प्राप्ति के लिये आत्मशुध्दि की आवश्यकता :

अहिंसा पालन के लिये आत्मशुध्दि प्रथम आवश्यकता है। गांधीजी के अनुसार अहंकारका पूर्ण उत्सर्ग ही आत्मशुध्दि है। उन्होंने अपनी आत्मकथा में आत्मशुध्दि की अनिवार्यता पर जोर देते हुए लिखा भी है -"आत्मशुध्दि के बिना जीवमात्र के साथ ऐक्य की साधना हो ही नहीं सकती। आत्मशुध्दि के बिना अहिंसा धर्म का पालन सर्वथा असंभव है। अशुध्दात्मा परमात्मा के दर्शन करने में असमर्थ है।"[१] यही कारण है कि गांधीजी जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आत्मशुध्दि पर जोर देते हैं। आत्मशुध्दि का अर्थ - मन, वचन और कर्म से निर्विकार यानी राग, व्देष से रहित होना है। इस प्रकार आत्मशुध्दि के लिये गांधीजी व्यक्तिगत स्वार्थ और तृष्णा को त्यागने की सलाह देते हैं क्योंकि उनके अनुसार यह स्वार्थ एवं तृष्णा ही मनुष्य को नीचे गिराती है, तृष्णा से ही अन्य वासनाएँ आती हैं। अत: इनका निषेध ही श्रेयस्कर है।

अहिंसा पालन के लिये विनय और नम्रता की आवश्यकता :

गांधीजी के अनुसार अविनयी और उध्दत व्यक्ति अहिंसक नहीं हो सकता। विनम्रता का अर्थ खुशामद नही है। "विनम्र होने का मतलब है दूसरों के प्रति आदर व्यक्त करना। साथ ही अपने धर्म पर आरूढ रहना।"[२] विनम्र व्यक्ति अपने स्वाभिमान के साथ साथ दूसरों के स्वाभिमान का पूरा ध्यान रखता है। वह अपने व्यवहार में इस बात पर विशेष ध्यान देता है

---

१. आत्मकथा : व्दितीय खण्ड - पृ. ३७८
२. गांधी चिंतन : मो. क. गांधी : अनुवादक यशपाल जैन : पृ. १७१

कि उसके किसी भी कार्य से दूसरे व्यक्ति के स्वाभिमान को ठेस न पहुँचे। उसकी यह सद्भावना ही उसे मनुष्य मात्र का मित्र बना देती है।

[२] धार्मिक पक्ष :

धर्म और अध्यात्म में अंतर :

"अध्यात्म का अर्थ है "आत्मन: संबध्द: आत्मनि अधिकृतं वा " जो आत्मा से जुड़ा हुआ है या जो आत्मा में अधिकृत या आधार प्राप्त है। वह परमात्मा, जो व्यक्ति में प्रगट है, जिसको परब्रह्म कहते हैं, उसका और जीव का संबंध ही अध्यात्म कहा जाता है। अर्जुन ने श्रीकृष्ण से पूछा "कि तद्ब्रह्म किमध्यात्मं" ब्रह्म क्या है और अध्यात्म क्या है ? तब श्रीकृष्ण ने कहा - "अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते" ब्रह्म अक्षर और परम है और उसका स्व-भाव वह अध्यात्म है। "श्रीधर"जी ने इसका विवेचन करते हुए कहा कि "स्वस्यैव ब्रह्मण एवांशतया जीवस्वरूपेण भावो भवनं स एव आत्मानं देहमधिकृत्य भोक्तृत्वेन वर्तमानोऽध्यात्म शब्देनोच्यते" अर्थात परब्रह्म की ही अंश रूप में जीव स्वरूप से जो स्थिति, देह को ग्रहण कर भोक्ता के रूप में रहना, वही अध्यात्म है।"[१] संक्षेप में, आत्मा-परमात्मा संबंधी चिंतन या तत्वमीमांसा को ही अध्यात्म कहते हैं।

आध्यात्मिक विकास मनुष्य जीवन का एक अभिन्न और आवश्यक अंग है। "अध्यात्मज्ञान हमें जगत् की उन शक्तियों का ज्ञान कराता है जो अदृश्य हैं फिर भी जो मानव जीवन को संचालित एवं प्रभावित करने में प्रमुख स्थान रखती हैं।"[२] अत: मनुष्य की सफलता के लिये यह आवश्यक है कि वह यह जाने कि वह खुद क्या है ? उसकी शक्तियाँ एवं मर्यादाएँ क्या है और जीव जगत् में उसका स्थान क्या है ? संबंध क्या है ? और कर्तव्य क्या है ? सारे विश्व का सृष्टा, पालक, नियंता एवं संहार करनेवाला कौन है, सृष्टि

---

१. श्रीवल्लभ - विज्ञान : जनवरी १९८७ अंक-७ : श्री विठ्ठलेश स्मृति ग्रंथ : 'अध्यात्म, व्यवहार में' शीर्षक लेख : लेखक - श्री. गोपालदासजी झालानी पृ. ४४

२. श्रीवल्लभ - विज्ञान : जनवरी १९८७ अंक-७ : श्री. विठ्ठलेश स्मृति ग्रंथ : 'अध्यात्म, व्यवहार में' शीर्षक लेख : लेखक - श्री. गोपालदासजी झालानी पृ. ४४

की रचना कैसे हुई, कितने की ? सृष्टि को नियंत्रण में रखनेवाली कोई सर्वशक्तिमान विभूति है अर्थात ब्रह्म है या निसर्ग का क्रम अपने आप चलता रहता है, ब्रह्म है तो उसका स्वरूप क्या है ? उसे कैसे प्राप्त किया जा सकता है ? इत्यादि विषयों पर गूढ़ चिंतन करना ही अध्यात्म चिंतन है। इस तरह अध्यात्म गूढ़ चिंतन का विषय है।

'धर्म' शब्द के अनेक अर्थ है – "जैसे कर्तव्य, अधिकार, नियम, न्याय, संप्रदाय विशेषों की प्रणालियाँ, नीति आदि कई अर्थों में धर्म शब्द का प्रयोग होता है।" "ध्रियते इति धर्म:" इस व्युत्पत्ति के अनुसार धर्म उन वस्तुओं का नाम है जिन्हें हम धारण करते हैं। अत: यह कहा जा सकता है कि ऐसी सब साधारण किंवा असाधारण बातें, जिनको हम धारण करते हैं धर्म शब्द की कोटि में प्रविष्ट हो जाती हैं। और उन्हींका फल इहलौकिक एवं पारलौकिक उन्नति है। अतएव महर्षि गौतम कहते हैं कि "यतोऽभ्युदय : निःश्रेयस सिध्दि: स धर्म:" अर्थात् जिससे अभ्युदय – इहलौकिक उन्नति और नि:श्रेयस अर्थात् पारलौकिक उन्नति की सिध्दि हो, उसका नाम धर्म है।"[1] इस तरह "हमारी धारण की हुई ऐसी बातें जिनका फल ऐहलौकिक एवं पारलौकिक है, वे सब 'धर्म' कहलाती हैं। अत: हमारे प्राचीन भारतीय धर्मशास्त्रों में एसी छोटी छोटी बातों का, जिन्हें हम रातदिन काम में लाते हैं, विचार किया गया है, जिनसे हमारी उन्नति ही उन्नति हो अवनति कदापि नहीं।"[2] धर्म प्राणिमात्र का ऐहिक एवं पारलौकिक दोनों को सुधारनेवाला है, जीवन को उन्नत करनेवाला तत्त्व है।

धर्म में सदाचरण को विशेष महत्त्व दिया गया है। सदाचरण मानवका अभ्युदय करता है और मोक्ष के व्दार तक पहुँचाता है। ब्रह्म को प्राप्त करने का क्या साधन है ? प्राणिमात्र को संसार में रहकर कैसा आचरण करना चाहिए, ईश्वर की उपासना कैसे की जाय ? पुरुषार्थ कैसे करना चाहिए

---

१. अग्निकुमार : सन् १९६२ सं. गो. चि. श्री माधवरायजी : 'धर्माचरण' लेख
लेखक – गो. श्री. गोवर्धनलालजी महाराज – नाथव्दारा
२. अग्निकुमार : सन् १९६२ सं. गो. चि. श्री माधवरायजी : धर्माचरण लेख.
लेखक – गो. श्री. गोवर्धनलालजी महाराज – नाथव्दारा

इत्यादि विषय धर्म के अंतर्गत विचारणीय है। यदि यह कहा जाय कि धर्म अध्यात्म की आचार संहिता है तो अतिशयोक्ति न होगी। भारतीय तत्त्वज्ञान की यह विशिष्टता है कि वह धर्मभावना के साथ संबध्द है। "धर्म भावना के बिना तत्त्वज्ञान पंगु है, और तत्त्वज्ञान बिना धर्मभावना अंध है। जिस तरह अंध को गति देने को पंगु की और पंगु को अंध की आवश्यकता हो, इसी तरह ज्ञान और धर्म भावना दोनों को परस्पर के सहकार की आवश्यकता है, नहीं तो दोनों की गति रूक जाएगी। दोनों का ध्येय परमात्मा की प्राप्ति है, परंतु उस ध्येय तक पहुँचने के लिये एक दूसरे के परिचय और सहकार की योजना की आवश्यकता है।"[1] इससे स्पष्ट हो जाता है कि धर्म और अध्यात्म दोनो अन्योन्याश्रित है। अध्यात्म केवल चिंतन का विषय है जबकि धर्म आचरण का विषय है। यहीं मूलभूत अंतर है।

धर्म के तत्त्व :

गांधीजी का सम्पूर्ण दर्शन धर्मकेन्द्रित रहा है। सैध्दांतिक रूप से धर्म के तीन तत्त्व बताये गये हैं - [१] पवित्र विश्वास, [२] मानवीय संवेग [३] आचरण । साधारणत: प्रत्येक धर्म में ये तत्त्व विद्यमान रहते हैं, किंतु देश, काल एवं परिस्थितियों के अनुरूप उसके स्वरूप में परिवर्तन होता है। अब हम यह देखेंगें कि गांधी धर्म अवधारणा में ये तत्त्व किस रूप में अभिव्यक्त हुए हैं।

पवित्र विश्वास :

गांधीजी का अटल विश्वास है कि ईश्वर एक ऐसी रहस्यमयी सत्ता है जो सर्वत्र व्याप्त है। इसी शक्ति से सारा संसार संचालित होता है और यह शक्ति नियमों या कानूनों के रूप में व्यक्त होती है। इन नियमों का भंग मनुष्य के लिये उचित नहीं, क्योंकि इससे संसार को विपत्तियों का सामना करना पड़ेगा। यदि हम कष्टों से मुक्त होकर परमानंद

---

१. श्रीवल्लभ विज्ञान : जून १९६३ अंक-१२ - तत्त्वार्थ दीप निबंध-परिचय

को प्राप्त करना चाहते हैं तो हमें निष्ठापूर्वक इन शाश्वत नियमों का पालन करते हुए सत्य के अधिक से अधिक निकट पहुँचने का प्रयत्न करना चाहिए।

मानवीय संवेग :

इन पवित्र विश्वासों के साथ प्रेम, श्रध्दा, घृणा, भय आदि संवेग जुड़े हुए हैं, जो मनुष्य की धार्मिक भावना को दृढ़ता प्रदान करते हैं। गांधीजी की धार्मिक भावना में श्रध्दा का प्राधान्य है। उनका कहना है कि हमें सर्वशक्तिमान ईश्वर पर श्रध्दा रखते हुए उन पर ही निर्भर रहना चाहिए। चूंकि श्रध्दा बाहय प्रमाण व्दारा सिध्द नहीं हो सकती, अत: सब से सुरक्षित मार्ग यह है कि हम सत्य एवं प्रेम के नियम की सर्वोपरिता में विश्वास करें। इस प्रकार श्रध्दा के साथ उन्होंने प्रेम संवेग को भी जोड़ दिया है। उनका प्रेम व्यक्ति या राष्ट्र तक सीमित नहीं, उसमें तो संपूर्ण प्राणिजगत् का भी समावेश हो जाता है। यह प्रेम ऊँचनीच की भावना से परे है, जिसमें पापी के साथ भी प्रेमपूर्ण व्यवहार का उपदेश है। इस प्रकार गांधी धर्म अवधारणा में श्रध्दा और प्रेम संवेग का प्राधान्य है और घृणा, ईर्ष्या, व्देष, भय आदि सर्वथा त्याज्य है।

आचरण और क्रियाएँ :

गांधीजी के अनुसार कोई भी धार्मिक आचरण अनैतिक नहीं होना चाहिये। निर्दयतापूर्ण असंयमित आचरण को वे नीति एवं धर्म के विरुध्द मानते हैं। व्यक्तिगत स्वार्थ भावना से प्रेरित होकर किया गया धार्मिक आचरण भी अनुचित है, किंतु निष्काम भाव से की जानेवाली क्रिया बुध्दि संगत न होते हुए भी नैतिक है। गांधीजी की दृष्टि में ऐसी आराधना प्रणाली उचित है जो शुध्द सात्त्विक और नि:स्वार्थ भाव से ईश्वर के निकट पहुँचने में सहायक होती हो तथा जो पाखण्ड से मुक्त हो।

गांधीजी द्वारा निर्धारित आराधना प्रणाली :

गांधीजी द्वारा निर्धारित आराधना प्रणाली में अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, अस्वाद आदि व्रतों के पालन के साथ ही साथ उपवास एवं प्रार्थना को भी स्थान दिया गया है। प्रार्थना के लिये कोई निश्चित प्रणाली निर्धारित न करते हुए उन्होंने कहा कि हम जिस रीति से चाहें प्रार्थना कर सकते हैं। केवल हमें इस बात का ध्यान रखना होगा कि हमारी प्रार्थना निष्काम हो।

धर्म और नैतिकता :

गांधीजी के विचारानुसार सच्चे धर्म और सच्ची नैतिकता में अविच्छेद्य संबंध है। नैतिकता हमारे हृदय में स्थित संकीर्णता, द्वेष भावना, अज्ञान और अविवेक तथा उनसे उद्भूत काम क्रोध, लोभ, मोह आदि कलुषों को दूर करने में सहायक होती है तथा इन दुर्गुणों से मुक्त होकर हम अपने हृदय में सत्य, प्रेम और विवेक को अधिक से अधिक स्थान देने में सक्षम हो सकते हैं। हमें अपने तथा दूसरे व्यक्ति के हृदय में स्थित परमपिता परमेश्वर की अनुभूति करने में तनिक भी कठिनाई नहीं होती। इस प्रकार नैतिकता और धर्म अन्योन्याश्रित है।

नैतिकता की जाँच के लिये गांधीजी ने एक कसौटी दी है। उनके अनुसार मनुष्य के जिस आचरण के पीछे उसका व्यक्तिगत स्वार्थ निहित होता है, वह आचरण अनैतिक है, जबकि परमार्थ की भावना को लेकर किया गया कार्य नीतियुक्त है। गांधीजी नीति के इन नियमों को अटल एवं अपरिवर्तनीय मानते हैं। उनका मानना है यदि कोई व्यक्ति धर्म का पालन न करते हुए भी नीति का पालन करता है तो वह समाज के लिये हितकर है, किंतु यदि कोई व्यक्ति नीति को न मानते हुए धर्म को मानता है तो वह समाज के लिये बहुत विनाशकारी है। संसार के धार्मिक विद्वेष, साम्प्रदायिक उत्पात तथा धर्म के नाम पर होनेवाले पाप नीति रहित धर्म पालन के कारण ही होते हैं। अतः समाज में सुख एवं शांति की स्थापना के लिये यह अनिवार्य है कि हम

धर्म में अंतर्निहित नैतिक मूल्यों को पहचानें। इस प्रकार की खोजव्दारा जहाँ मनुष्य की धार्मिक निष्ठा में वृध्दि होगी, वहीं धार्मिक विव्देष का भी अंत होगा और मानवता का कल्याण होगा।

धर्म के समान जीवन के लिये भी गांधीजी नैतिकता को अनिवार्य मानते हैं। नैतिक आधार ग्रहण करके ही मनुष्य अपनी एवं समाज की उन्नति कर सकता है। नैतिकता की भावना मनुष्य में अंतर्निहित संहार एवं संघर्ष की भावनाओं को नष्ट कर उसे परोपकार, शांति और सुख के लिये प्रेरित करती है। इस प्रकार नीति और धर्म जीवन के लिये अनिवार्य तत्त्व है।

गांधीधर्म और व्यक्ति :

गांधीजी के अनुसार जो व्यक्ति सत्य का साक्षात्कार करना चाहता है उसे नि:स्वार्थ भाव से मानव सेवा करते हुए त्यागपूर्ण जीवन व्यतीत करना चाहिए। गांधीजी व्यक्तित्त्व के पूर्ण विकास को ही मोक्ष कहते हैं। उनके अनुसार भक्ति की पराकाष्ठा या साधना की चरम स्थिति ही मोक्ष की स्थिति है, जिसमें मनुष्य को परम शांति मिलती है।

संक्षेप में, गांधीजी की धर्म भावना में लोक कल्याण की भावना निहित है। वे अंधविश्वासों में विश्वास नहीं करते। उनके व्दारा निर्धारित आराधना प्रणाली को अपनाकर मनुष्य सेवा के उच्चतम साधन के माध्यम से सर्व-शक्ति संपन्न ईश्वर के निकट पहुँचने का प्रयत्न कर सकता है।

धर्म और राजनीति की अभिन्नता :

गांधीजी राजनीति को भी धर्म से संबंध्द करना चाहते हैं क्योंकि उनके लिये धर्मविहीन राजनीति का मूल्य कुछ भी नहीं। नीतिशून्य राजनीति को वे सर्वथा त्याज्य मानते हैं। उनका आग्रह था कि राज्यनीति धर्म के शाश्वत नियमों, सत्य, अहिंसा, प्रेम, सेवा आदि का पूर्ण पालन करे।

धर्म और अर्थ :

गांधीजी धर्म और अर्थ को भी अन्योन्याश्रित मानते हैं। यही कारण है कि उनका धर्म किसी सीमा तक अर्थतत्त्व को भी स्वीकार करता है।

उनके विचारानुसार यदि मनुष्य की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं होती तो अभाव के कारण मनुष्य धर्म से च्युत हो जाता है तथा अपराध पूर्ण जीवन व्यतीत करने लगता है। अत: धर्म के पालन के लिये गरीबों की आवश्यकताओं की पूर्ति जरूरी है। गांधीजी के इस कथन से "न्यूनतम अर्थव्यवस्था के अभावमें धर्मपालन संभव नहीं" हमें यह अर्थ कदापि नहीं लेना चाहिए कि वे अध्यात्मिकता की अपेक्षा भौतिकता को सर्वोपरि मानते थे। वे धर्म पालन के लिये एक सीमा तक ही अर्थ की महत्ता को स्वीकार करते हैं, आवश्यकता से अधिक धन संचय को वे बुरा मानते हैं, क्योंकि उनके विचारानुसार भौतिक सुख सुविधाओं की अत्युक्ति से मनुष्य इतना स्वार्थी, अनैतिक एवं अधार्मिक हो जाता है कि उसके लिये इन बुराईयों से मुक्ति पाना कठिन हो जाता है। स्पष्ट है कि गांधीजी केवल आवश्यकतापूर्ति के निमित्त ही धन की अनिवार्यता पर जोर देते हैं। गांधीजी की दृष्टि में त्याग और अपरिग्रह ही धर्म है। "जो व्यक्ति जितना अधिक भोग और परिग्रह से मुक्त होगा, वह उतना ही सच्चे सुख का अनुभव करेगा तथा मानव सेवा की ओर अग्रसर होगा और जो जितना अधिक सेवा करेगा, वह उतना ही अधिक ईश्वर के निकट पहुँचेगा।"[१]

गांधीजी आर्थिक व्यवस्था को बनाये रखने के लिये नैतिक नियमों का पालन आवश्यक मानते हैं। यदि मनुष्य के आचरण में नैतिक धार्मिक स्तर और मूल्यों का ह्रास होता है तो आर्थिक व्यवस्था का संतुलन भंग होता है, उसका विघटन और विनाश होता है और अंतत: अधिकांश को दु:ख प्राप्त होता है। अत: उन्हें अर्थव्यवस्था का कोई भी ऐसा तत्व स्वीकार्य नहीं, जो मनुष्य के नैतिक और अध्यात्मिक विकास में अवरोधक हो, हिंसा का जन्मदाता हो। यही कारण है कि वे औद्योगिकरण को अभिशाप मानते हैं तथा उसको उसी सीमा तक स्वीकार करते हैं, जब तक कि वह मनुष्य की उन्नति में सहायक हो।

धार्मिक सहअस्तित्व का सिध्दांत :

गांधीजी की दृष्टि में सभी धर्मों के ईश्वर मूलत: एक ही है। तथा धर्म में निहित मूल तत्व भी समान हैं, किंतु मनुष्य अपनी भिन्न भिन्न प्रकृति तथा भिन्न प्राकृतिक परिस्थितियों के कारण धर्म को भिन्न भिन्न रूप में

---

१. गांधीधर्म और समाज : शम्भूरत्न सिंह : पृ. १५५

देखता है। अत: अपने धर्म का अनुसरण करते समय मनुष्य को इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि वह अपने धर्म को वरीयता देते हुए भी अन्य धर्म का अपमान नहीं करेगा तथा उसे हानि नहीं पहुँचायेगा, उसे अपने धर्म के साथ साथ अन्य धर्मों के अस्तित्व को भी स्वीकार करना होगा तथा अन्य धर्मों के प्रति घृणा भाव न रखते हुए सहिष्णुता, सद्भावना और आदर की प्रवृत्ति का विकास करना होगा। उसे अपने व अन्य धर्मों में अंतर्निहित बुराईयों से यथासंभव बचते हुए उनमें जो ग्राहय तत्त्व हैं उसे ही ग्रहण करना चाहिए। दूसरे धर्म की आलोचना इसलिये भी उचित नहीं, क्योंकि यह आवश्यक नहीं कि आलोचक स्वयं भी अपने आप में पूर्ण रूप से सही हो। धार्मिक सहिष्णुता के अंतर्गत वे धर्मपरिवर्तन को स्वीकार नहीं करते। यदि मनुष्य को अपने धर्म की अपेक्षा अन्य धर्म में अधिक गुण दिखाई दे तो वह अपने धर्म में उस धर्म के ग्राहय गुणों को आत्मसात कर अपने ही धर्म के स्वरूप को बदल सकता है और निष्ठा पूर्वक धर्म पालन करते हुए अपने नैतिक उत्थान के लिये प्रयत्न कर सकता है। गांधीजी धर्म परिवर्तन को इसलिये भी नहीं स्वीकारते क्योंकि इससे उनके सर्वधर्म समभाव के मत का खण्डन स्वयमेव हो जाता हैं। हाँ वे अन्य धर्म के अच्छे तत्वों को ग्रहण करना उचित मानते हैं।

संक्षेप में, गांधीजी का धर्म किसी संप्रदाय या मत विशेष तक सीमित नहीं। उसका स्वरूप बहुत व्यापक है जिसमें अन्य धर्मों के आकर्षक तत्वों को अपनाने की पूरी छूट है तथा वह पाखण्ड, आडंबर, अंधविश्वास आदि बुराईयों से परे, सच्ची, मानव सेवा की भावना पर आधारित है। गांधीजी की दृष्टि में धर्म वह है जो मनुष्य की प्रकृति को बल दे, जो हृदय को सत्य से बांध दे तथा जो हमेशा शुध्दिकरण कर हृदय को पवित्र बनाये। संक्षेप में धर्म का अर्थ है, सृष्टि के नैतिक शाश्वत नियम में विश्वास।

गांधीजी का ईश्वर अनंत, तेजोमय, प्रेममय और सत्यमय है, जिसे प्राप्त करना ही मनुष्य का चरम लक्ष्य है। आत्मशुध्दि द्वारा ही यह संभव है। आत्मशुध्दि के लिये तप एवं भगवद्भक्ति की आवश्यकता है। तप का अर्थ है, आत्मपीड़न – पीड़ा की आँच में पिघल कर ही आत्मा का अहंकार रूपी मल

बह जाता है और वह कुंदन बन जाती है। किंतु इस असिव्रतधारा के पालन के लिये भगवद्भक्ति परम् आवश्यक है। अत: गांधीजी ने अपने दर्शन के अंतर्गत प्रार्थना की उपादेयता को भी स्वीकार किया है।

प्रार्थना :

गांधीजी के अनुसार "प्रार्थना धर्म की सारभूत अभिव्यक्ति या आत्मा है। किंतु प्रार्थना कोई भिक्षाटन नहीं, यह तो अंतरात्मा की पुकार है, यह तो अपनी दुर्बलताओं का दैनिक स्मरण है।....यह आत्म विश्लेषण एवं आत्म निरीक्षण है।.....यहाँ आत्मशुध्दि और अहंकार का निराकरण होता है। यह अपने लोगों के लिये भी आत्मपीड़न सहने की शक्ति हमें प्रदान करती है।"[१]

गांधीजी व्यक्तिगत स्वार्थ साधना के लिये नहीं, बल्कि आत्मशुध्दि के निमित्त ही प्रार्थना के महत्त्व को स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार तो प्रार्थना अध्यात्मिक अनुशासन है, आत्म निरीक्षण का साधन है, ह्दय के विश्लेषण की प्रक्रिया है और संसार में परिव्याप्त ईश्वरीय शक्ति में अपने को आत्म निमग्न कर देने की आकांक्षा है। प्रार्थना व्दारा जहाँ मनुष्य आलौकिक एवं लौकिक जीवन में शांति एवं व्यवस्था को बनाये रख सकता है, वहीं वह दैनिक कार्यों में व्यवस्था और सामंजस्य स्थापित कर सकता है। इस प्रकार गांधीजी की प्रार्थना के अंतर्गत आत्म विकास की प्रक्रिया निहित है। मनुष्य का विकास उसी अवस्था में संभव है जब वह अपनी शारीरिक एवं आंतरिक दुर्बलताओं से पूर्णतया मुक्त हो जाय। इन दुर्बलताओं से वह प्रार्थना व्दारा ही मुक्ति पा सकता है। क्योंकि प्रार्थना के दौरान वह आत्म विश्लेषण कर अपनी आंतरिक बुराईयों को पहचानता है तथा उनके उन्मूलन के लिये प्रयत्नशील रहता है। गांधीजी कर्म और श्रम को ही सच्ची प्रार्थना मानते हैं। दु:खी दरिद्रों की निष्काम सेवा से मन के समस्त कलुष धुल जाते हैं और आत्मा पवित्र एवं निर्मल बन जाती है।

---

१. महात्मा गांधी का दर्शन : डॉ. धीरेन्द्र मोहन दत्त : पृ. ३३-३४

वैराग्य :

तटस्थतापूर्ण सत्य कथन के लिये तथा साहसपूर्ण प्रेम एवं क्षमापूर्ण व्यवहार के लिये गांधीजीने वैराग्य के महत्त्व को भी स्वीकार किया है।

गांधी धर्म अवधारणा में उपवास का स्थान व महत्त्व :

गांधीजी ने अध्यात्मिक विकास के लिये इन्द्रिय निग्रह और इन्द्रिय निग्रह के लिये उपवास करने का आग्रह प्रकट किया हैं। सच्चे हृदय से किया गया उपवास मन, शरीर, और आत्मा तीनों को शुध्द करता है।

साधारणत: हम उपवास का अर्थ निराहार रहना या अल्पाहार करने तक ही सीमित मानते हैं। किंतु गांधीजी उपवास को केवल जिव्हा से संबध्द नहीं मानते, उनके अनुसार तो उपवास का संबंध संपूर्ण इन्द्रियों के नियंत्रण से है। सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखने के लिये भी गांधीजी उपवास की आवश्यकता को स्वीकार करते हैं। सार्वजनिक उपवास के विषय में उनका विचार है - सार्वजनिक उपवास जनता की आत्मशक्ति या मनोबल की वृध्दि कर सकता है, पिछली भूलों के प्रति सावधान कर सकता है, किसी अन्याय या अत्याचार का अहिंसक प्रतिरोध कर सकता है। किंतु उपवास किसी अनुचित हेतु या स्वार्थपूर्ति के लिये नहीं करना चाहिए। उपवास में विपक्षी को विवश करने या बाध्य करने का भाव नहीं है। यह तो विपक्षी के हृदय को जगाने की प्रणाली है, इसमें आत्मपीड़न पर विशेष रूप से बल दिया जाता है और यह आत्मपीड़न ही विपक्षी के हृदय में स्थित ईश्वर या सत्य को जागृत करता है और वह न्याय और सत्य के पथ पर आ जाता है। अनुचित एवं असत् उद्देश्य को लेकर किया जानेवाला उपवास विपक्षी पर अनुचित दबाव भी डालता है और हिंसात्मक भी होता है। इस प्रकार गांधीजी का उपवास का यह दर्शन उच्च कोटि की नैतिकता पर आधारित है, जो सामाजिक क्षेत्र में अन्याय और अनाचार का प्रतिरोध करता है। संक्षेप में गांधीजी का उपवास अध्यात्मिक उच्चता को प्राप्त करने में व ईश्वर साक्षात्कारमें सहायक होता है। साथ ही वह व्यक्तिगत एवं सामाजिक बुराईयों के परिष्कार में भी सहायक होता है।

गांधीजीने अध्यात्मिक उन्नति एवं सत्य साक्षात्कार के लिये जिन महाव्रतों के मनसा, वाचा, कर्मणा पालन पर जोर दिया है वे इस प्रकार हैं : ब्रहमचर्य, अस्वाद, अस्तेय, अपरिग्रह, अभय। अब हम यहाँ उनका संक्षिप्त विवेचन कर रहे हैं।

ब्रहमचर्य :

सत्य और अहिंसा की सिध्दि के लिये गांधीजीने ब्रहमचर्य को अनिवार्य तत्त्व के रूप में स्वीकार किया है। उनके अनुसार "जिस प्रकार अहिंसा के बिना सत्य की सिध्दि संभव नहीं, उसी प्रकार ब्रहमचर्य के बिना सत्य और अहिंसा दोनों की सिध्दि असंभव है।"[१] सामान्यत: हम ब्रहमचर्य का अर्थ यौन नियंत्रण तक ही सीमित कर देते हैं, किंतु गांधीजी ब्रहमचर्य के अंतर्गत अपवित्र विचार, शब्द और क्रियाओं को भी वर्जित मानते हैं। इस प्रकार ब्रहमचर्य का मूल अर्थ विकार या वासना का निरोध है। विकार केवल जननेंद्रिय से ही संबध्द नहीं है, वरन् अन्य इन्द्रियों से भी उसका संबंध है। मन में वासना का उदय तो जीभ, आँख, कान, हाथ के माध्यम से भी हो सकता है। जब इनमें से किसी एक या अधिक अंगों के कारण मनमें विकार उत्पन्न होता है तो जननेन्द्रिय को नियंत्रित करना असंभव ही नहीं कठिन हो जाता है। अत: वे ब्रहमचर्य के अंतर्गत केवल जननेन्द्रिय नियंत्रण को ही पर्याप्त नहीं मानते, वरन् समस्त इन्द्रियों के नियंत्रण पर जोर देते हैं, जिससे अन्य किसी इन्द्रिय व्दारा वासना का उदय न हो सके। डॉ. रामनाथ सुमनने गांधीजी के ब्रहमचर्य व्रत की आलोचना करते हुए लिखा है "ब्रहमचर्य का आत्यंतिक अर्थ मन को ब्रहम में नियोजित करने की चेष्टा है, इसके लिये मन, वचन और शरीर की पवित्रता आवश्यक है। इसलिये ब्रहमचर्य का स्थूल अर्थ मन, वचन शरीर में पवित्र रहना और अपनी शक्तियों को लक्ष्य [सत्य साधना] में केन्द्रित कर देना है।"[२] यह इन्द्रिय दमन भी

---

१. गांधी-विचार-दोहन : किशोरलाल मशरूवाला : पृ. १८
२. गांधी विचारधाराका हिन्दी साहित्य पर प्रभाव : डॉ. अरविंद जोशी पृ. ७० से उद्धृत

स्वेच्छा से ही किया जाना चाहिए, अनिच्छा से ब्रहमचर्य का पालन करने से शरीर विकारयुक्त बन जाता है।

ब्रहमचर्य का लक्ष्य :

प्रारंभ में गांधीजी संतति निग्रह और शरीर रक्षण के निमित्त ही ब्रहमचर्य को अनिवार्य मानते थे, किंतु बाद में विचार करने पर उन्हें उसके ऊँचे लक्ष्य का बोध हुआ और उन्होंने ब्रहमचर्य व्रत के संकुचित अर्थ का विस्तार किया। उनके मत से ब्रहमचर्य का मुख्य लक्ष्य ब्रहमदर्शन है। सत्य शोध के लिये विकार रहित मन की आवश्यकता होती है और इन्द्रिय निग्रह से ही मन विकार रहित होता है। इस प्रकार सत्य साधना के लिये ब्रहमचर्य अपरिहार्य तत्त्व है।

यहाँ यह प्रश्न सहज ही हमारे समक्ष उपस्थित होता है कि मनोवैज्ञानिक धरातल पर ब्रहमचर्य कहाँ तक उचित है ? हम जानते हैं कि मनुष्य यदि अपनी भोगेच्छा को जबर्दस्ती दबाए तो उसके मनमें विकृति पैदा होती है, उसके मनमें अनेक प्रकार की कुण्ठाएँ घर कर जाती हैं। आधुनिक मनोवैज्ञानिकों का भी यही मानना है कि मनुष्य यौन इच्छाओं का दमन चाहे कितना ही शनैः शनैः क्यों न करे, इससे मनुष्य के मनमें ऐसी कुंठाएँ उत्पन्न होती हैं, जो निश्चय ही उसके मन को विकृत बना देती हैं। गांधीजी स्वयं इस मनोवैज्ञानिक तथ्य से परिचित थे अतः उन्होंने एक नवदम्पति को विवाहोपरांत परामर्श देते हुए कहा था "मक्कार मत बनो, जो कुछ करना तुम्हारे लिये असंभव है, उसे करने के निरर्थक प्रयास में अपने स्वास्थ्य को मत बिगाड़ो। अपनी सीमाओं को पहचानों और उतना ही करो जो तुम से सधे। मैंने तुम्हारे सामने आदर्श रख दिया है, जो सही कोण है, उस सही कोण को प्राप्त करने के लिये जितना अधिक हो सके, उसे पाने का प्रयत्न करो।"[१] स्पष्ट है कि गांधीजी एकदम ब्रहमचर्य व्रत को अपनाने की सलाह नहीं देते। यद्यपि आध्यात्मिक उन्नति के लिये ब्रहमचर्य

---

१. हरिजन : २४-४-३७

का पूर्ण पालन आवश्यक तो है, किंतु यह एक कठिन व्रत है अत: एकदम इसका पालन घातक भी है। किंतु धीरे धीरे प्रयत्न करने पर मनुष्य अपनी इन्द्रियों को वश में कर सकता है।

गांधीजी संतति नियमन को आवश्यक मानते हैं क्योंकि यदि मनुष्य अपनी इन्द्रिय को संयम में रखकर ब्रहमचर्य व्रत का पालन नहीं करता तो इससे जनसंख्या में निरंतर वृध्दि होती रहती है। और बढ़ती हुई जनसंख्या संक्रामक स्थिति को जन्म देती है जिससे भूखमारी व बेकारी बढ़ती है। इस प्रकार ब्रहमचर्य व्रत के पालन व्दारा जब मनुष्य बढ़ती हुई जनसंख्या पर नियंत्रण पा लेगा तब उसकी अन्य समस्याओं का अंत स्वयमेव ही हो जाएगा।

ब्रहमचर्य की व्यवहारिकता :

गांधीजी ने सत्यशोध एवं मानव सेवा के निमित्त ब्रहमचर्य व्रत को आवश्यक बताते हुए सत्य साधक के लिये अविवाहित रहना उचित माना है। जो पहले से ही विवाहित हैं उन्हें भी पति पत्नी के रूप में न रहते हुए भाई-बहन की तरह रहने की सलाह दी है। ये दोनों बाते सामान्य मनुष्य के लिये सहज साध्य नहीं है, अत: कुछ आलोचकों ने ब्रहमचर्य व्रत की व्यवहारिकता को नकारते हुए उसे कल्पनावादी कहा है। गांधीजी स्वयं भी इस तथ्य से परिचित थे कि विवाहित स्त्री पुरूषों का अविवाहितों के रूप में रहना कठिन है, किंतु उन्होंने तो हमारे समक्ष एक आदर्श मात्र रखा था, जिसे हमें अपनी शक्ति एंव सीमाओं के अनुसार अपनाना चाहिए। यह कहकर कि आदर्श का पूर्णपालन असंभव हे, अत: उस आदर्श का पालन ही न करना अनुचित है। हमें तो अपनी शक्ति और सीमाओं को पहचानते हुए उस उच्च आदर्श की ओर निरंतर बढ़ते रहना चाहिए। किंतु यहाँ यह प्रश्न सहज ही उठता है कि जो लोग अपनी इन्द्रियों पर बिलकुल काबू न रख पाये वे क्या करें ? क्या वे आत्महत्या कर लें या स्वयं को पापी मानते हुए अशांत रहें ? इस संबंध में उनका विचार है "यदि पतिपत्नी में संभोग करने में यह उच्च उद्देश्य हर समय कायम न रह सके, तो इसे पाप समझने की कोई आवश्यकता नहीं और न उसमें कोई निंदा की बात है। x x x ऐसे लोग प्रकृति के नियमों को तोड़कर चलने के लिये सैकड़ों बीमारियों का शिकार रहेंगे। पूर्ण ब्रहमचर्य तथा विवाहित ब्रहमचर्य उन

लोगों के लिये है जो अध्यात्मिक या उच्चतर जीवन के इच्छुक हैं।"[१]

अस्वाद :

अस्वाद सिध्दांत ब्रहमचर्य व्रत से संबध्द है। अस्वाद का अर्थ है स्वाद न लेना। जिस प्रकार हम दवाई कड़वी है या मीठी, उसका विचार न करते हुए अपने स्वास्थ्य की सुरक्षा के लिये उसे निश्चित मात्रा में ग्रहण करते हैं उसी प्रकार हमें अन्न के स्वाद पर ध्यान न देकर उसे शारीरिक स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिये निश्चित मात्रा में ग्रहण करना चाहिए। जिस प्रकार दवाई जिस मात्रा में लेनी चाहिए उससे कम मात्रा में लेने पर वह लाभदायक सिध्द नहीं होती और अधिक मात्रा में लेने पर हानि होती है, उसी प्रकार शरीर को जितनी आवश्यकता है उसी परिमाण में अन्न ग्रहण करना चाहिए। उससे कम मात्रामें अन्न ग्रहण करने पर शरीर क्षीण होगा और अधिक मात्रा में ग्रहण करने पर भी शारीरिक रूप से मनुष्य का स्वास्थ्य ठीक नहींरहता। अत: इस बात का निर्णय करके कि कौनसी चीज किस परिमाण में हमारे जीवन को बनाये रखने के लिये नितांत अनिवार्य है, यदि हम उसे ही ग्रहण कर शेष चीजों का त्याग करें तो हमारे भीतर के विकार स्वयमेव ही शांत हो जावेंगे।

अस्तेय सिध्दांत :

अस्तेय सिध्दांत को गांधीजी आत्मानुभूति के लिये आवश्यक मानते हैं। अस्तेय का सामान्य अर्थ है चोरी न करना किंतु गांधीजी ने इस स्थूल अर्थ को ग्रहण न करके उसका सूक्ष्म अर्थ घटन कर चोरी के अनेक भेद किये हैं।

[१] किसी वस्तु को बिना बताए या छिपकर ले लेना तो चोरी है ही पर मनुष्य अपनी माने जानेवाली चीज की भी चोरी करता है जैसे एक बाप अपने बच्चे को बिना बताये उससे छुपाने की नीयत से गुपचुप कोई चीज खाले।

[२] किसी वस्तु को उसकी जानकारी में, बिना पूछे लेना चोरी है।

---

१. गांधी धर्म और समाज : शम्भुरत्न सिंह : पृ. ५०

[३] कोई वस्तु आवश्यकता न होने पर मांगकर लेना चोरी है।

[४] कोई वस्तु भविष्य के लिये संग्रह करना चोरी है।

[५] अपनी ही वस्तु अपने घरवालों या मित्रों से छिपाकर प्रयोग करना चोरी है।

[६] मन से हमारा किसी चीज को पाने की इच्छा करना या उस पर नजर डालना चोरी है।

[७] लावारिस चीज को अपने पास रख लेना चोरी है।

[८] किसी चीज की जरूरत न होने पर भी यदि मनुष्य वह चीज उसके मालिक की आज्ञा से भी लेता है, तो वह एक प्रकार की चोरी है।

वस्तुत: मनुष्य अपनी आवश्यकता की मात्रा से अनभिज्ञ है और प्राय: वह अपनी जरूरतों को आवश्यकता से अधिक समझ लेता है और इस प्रकार अनजाने और अनचाहे वह चोर बन जाता है। अत: अस्तेय व्रत के पालनकर्ता के लिये यह जरूरी हो जाता है कि वह उत्तरोत्तर अपनी आवश्यकताओं को घटाता जाए। इससे एक ओर जहाँ वह व्यर्थ की चोरी के पाप से बचेगा, वहीं उसके इस कार्य से दरिद्रता का भी थोड़ा बहुत अंत हो जाएगा। गांधीजीने अस्तेय सिध्दांत के अंतर्गत मानसिक चोरी को भी निषिध्द माना है। यदि कोई बच्चा किसी वस्तु को लालायित दृष्टि से देखता है तो वह मानसिक चोरी करता है। चोरी के मूल में मनुष्य की किसी वस्तु को पाने की लालसा ही निहित रहती है। आज केवल हम जिस वस्तु को पाने का विचारमात्र करते हैं कल हम उस वस्तुको पाने के लिये प्रयत्न भी करते हैं, इस प्रकार उस वस्तु को पाने की इच्छा से कभी कभी हम चोरी करने या छीना झपटी जैसे बुरे कार्यों की ओर भी प्रवृत्त होते हैं, जिससे हमारा नैतिक पतन होता है। अत: किसी वस्तु को पाने की इच्छा करना भी एक प्रकार की चोरी है। गांधीजी विचारों की चोरी को भी अनुचित मानते हैं। कई बार मनुष्य किसी विव्दान के उत्तम विचारों की चोरी करता है और फिर दावे के साथ यह कहता है कि यह विचार मेरे अपने हैं। स्पष्ट है कि गांधीजी किसी के उत्तम विचारों को

अपनाने से हमें नहीं रोकते, किंतु उन्हें विचारों की यह चोरी सहय नहीं।

अपरिग्रह सिध्दांत :

अपरिग्रह का अर्थ है संचय करना या इकठ्ठा करना। चूंकि गांधीजी अनावश्यक संग्रह को भी एक प्रकार की चोरी मानते हैं, अत: वे सत्यशोधक के लिये अपरिग्रही होना आवश्यक मानते हैं। इस व्रत के अंतर्गत दैनिक उपयोग की वस्तुओं का अनावश्यक संग्रहकरना वर्जित है। आज की हमारी जो जरूरत है, बस उतना ही संग्रह करना चाहिए।

गांधीजी के मत से ईश्वर साक्षात्कार केवल उसी स्थिति में संभव है, जब मनुष्य में स्थित ईश्वर की सेवा निष्काम और समर्पण भाव से की जाय। किंतु मानव सेवा एवं समर्पण की भावना मनुष्य में तब तक नही आ सकती, जब तक कि उसका मन संग्रह और सम्पत्ति के मोह में फंसा हुआ है। यही कारण है कि गांधीजी अपरिग्रह को नितांत अनिवार्य बताते हुए आवश्यकता पड़ने पर प्राण त्याग करने को भी तैयार रहने की सलाह देते है। उनका कहना है कि जिस प्रकार परमात्मा परिग्रह नहीं करता और अपनी आवश्यक वस्तु रोज-बरोज पैदा करता है, उसी प्रकार हमें भी भविष्य की चिंता से परिग्रह नहीं करना चाहिए, हमें तो ईश्वर पर दृढ़ विश्वास रखते हुए यह समझना चाहिए कि वह हमें आवश्यक चीज रोज-बरोज देता है और देता रहेगा। जो मनुष्य इस ईश्वरीय विधान को ठुकराकर अनावश्यक अर्थ संग्रह या अन्न संग्रह करता है वह पाप करता है। आज जगत में जो विषमतापूर्ण वातावरण फैला हुआ है उसका प्रधान कारण मनुष्य की अतिशय परिग्रह वृत्ति ही है। आर्थिक रूप से समर्थ अधिकांश लोग अपनी आवश्यकता से अधिक संग्रह करके दूसरों का हिस्सा छीनते हैं, और परिणाम स्वरूप उनके पास जहाँ उस वस्तु का अनावश्यक संग्रह होता है, वहीं उस वस्तु के अभाव में असंख्य लोग परेशान होते हैं, । गरीबी और भूखमरी का बढ़ना परिग्रह वृत्ति का ही परिणाम है। अत: यदि हमें गरीबी, भूखमरी, बेकारी आदि इन समस्याओं से मुक्ति पानी हो तो उसका एक मात्र उपाय है अपरिग्रह का पालन। यहाँ यह प्रश्न सहज ही उपस्थित होता है कि मनुष्य की आवश्यकताएँ असीम हैं, तब उसकी उचित आवश्यकता का निर्णय कैसे हो

सकता है ? इस विषय में गांधीजी ने उच्च आदर्श प्रस्तुत करते हुए कहा है - आदर्श आत्यंतिक अपरिग्रह तो उसे ही कहा जायगा, जो मन और कर्म से दिगम्बर है। यहाँ तक कि वह पक्षी की भाँति बिनाघर, वस्त्र और बिना अन्न के विचरण करता है। इस स्थिति तक तो बहुत बिरले व्यक्ति ही पहुँच सकते हैं। सामान्य मनुष्य के लिये तो यही उचित है कि वह अपनी आवश्यकताओं को अधिकतम सीमित कर दे। ज्यों ज्यों उसकी आवश्यकताएँ घटती जाती हैं, त्यों त्यों वह सुखी, शांत और सब तरह से स्वस्थ रह सकता है। गांधीजी के अपरिग्रह सिध्दांत के अंतर्गत तो यह शरीर भी एक प्रकार का परिग्रह है। भोगेच्छा के कारण हमने शरीर का आवरण ले लिया है। किंतु मनुष्य की भोगेच्छा शांत हो जाने पर उसके लिये इस शरीर का कोई महत्व नहीं रहता। उस स्थिति में वह यह सोचने लगता है कि अब तब भोगेच्छा ही नहीं रही, तब सर्वव्यापक आत्मा शरीर रूपी पिंजरे में कैसे कैद रह सकता है। इस प्रकार सोचते हुए वह आत्यंतिक त्याग को पहुँच जाता है और जब तक यह नश्वर शरीर नष्ट नहीं हो जाता, तब तक वह मन एवं शरीर से यथा संभव मानव सेवा में संलग्न रहता है। उस स्थिति में उसका खाना-पीना, सोना-बैठना उसकी प्रत्येक क्रिया सेवा के लिये होती है। इस प्रकार सेवा व्दारा जहाँ उसे आत्यंतिक सुख की अनुभूति होती है, वहीं अंत में वह इसके व्दारा ईश्वर साक्षात्कार करने में भी समर्थ हो जाता है। गांधीजी वस्तुओं के संग्रह के साथ साथ वैचारिक संग्रह को भी निषिध्द मानते हैं। उनके अनुसार ऐसे विचार परिग्रह के अंतर्गत आते हैं जो हमें ईश्वर के सम्मुख ले जाने की अपेक्षा ईश्वर से विमुख रखते हो। अतः ऐसे विचारों का त्याग ही श्रेयस्कर है।

अपरिग्रह का लक्ष्य :

गांधीजी के अपरिग्रह सिध्दांत का लक्ष्य मात्र समाज की आर्थिक विषमता को दूर करना ही नहीं है, बल्कि इसका उच्चतम लक्ष्य तो आत्मा का मोक्ष है। सत्य की शोध का एकमात्र मार्ग है शुध्द मन से प्राणिमात्र की मन, वचन, कर्म से निःस्वार्थ सेवा करना। अतः सत्य शोधक केलिये यह

अनिवार्य है कि वह स्वार्थ त्याग कर परमार्थी बने। परिग्रही व्यक्ति नि:स्वार्थ सेवा करने में असमर्थ होता है। क्योंकि परिग्रह के मूल में मनुष्य की स्वार्थ भावना ही निहित रहती है।

ट्रस्टीशिप का सिध्दांत :

गांधीजी का ट्रस्टीशिप का सिध्दांत उनके अपरिग्रह सिध्दांत से ही संबंध्द है। गांधीजी समाज में समान सम्पत्ति वितरण के समर्थक थे, अत: उन्हें यह सहय नहीं था कि संपत्ति केवल कुछ ही लोगों के हाथ में केंन्द्रित हो जाय एवं उसके अभाव में अन्य लोग कठिनाइयाँ झेलते रहें। अत: गांधीजी ने समान अर्थ वितरण की व्यवस्था के लिये ट्रस्टीशिप का सिध्दांत बनाया। इस सिध्दांत के अनुसार धनिक वर्ग के पास जो अपार धन सम्पत्ति है, उसके मालिक वे अकेले नहीं है, वरन् उस सम्पत्ति के बराबरी के हकदार वे मजदूर भी हैं, जिन्होंने कड़ा परिश्रम करके वह सम्पत्ति अर्जित करने में उन्हें सहायता की है। अत: गांधीजी का परमार्श यह है कि धनिकों को अपनी अपार सम्पत्ति पर अपना एकाधिकार न रखते हुए उस विशाल सम्पत्ति में से केवल उतनाही धनग्रहण करना चाहिए, जितना उन्हें अपनी न्यायिक आवश्यकताओं के लिये आवश्यक हो और शेष धन समाज के उपयोग के लिये दे देना चाहिए। गांधीजी ने जहाँ धनिकों को स्वेच्छापूर्वक धन त्यागने और जरूरतमंदों की मदद करने का परामर्श दिया है वहीं श्रमिकों को भी उनके कर्तव्य के प्रति जागृत कर अहिंसक मार्ग से अधिकार प्राप्त करने पर जोर दिया है। गांधीजी व्यक्तिगत स्वार्थ के लिये किये गये धन संग्रह को बुरा मानते हैं किंतु परमार्थ की भावना से किया गया अर्थ संग्रह उनकी दृष्टि में अहिंसक कार्य है क्योंकि परमार्थ की भावना को लेकर धन संग्रह करनेवाला व्यक्ति संग्रह तो करता है, किंतु वह उस धन का उपयोग अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये नहीं करता, वह उस धन का अपने को मालिक नहीं केवल ट्रस्टी ही समझता है और धन के प्रति बिना किसी प्रकार की आसक्ति रखे हुए आवश्यकता पड़ने पर उसे छोड़ भी देता है। अत: केवल मानव सेवा की उच्चतम भावना को लेकर संग्रहित किया जानेवाला यह धनसंग्रह अहिंसक है, अत: उचित भी है।

शरीर श्रम तथा स्वावलंबन :

गांधीजी के धार्मिक विचारों के अंतर्गत श्रम का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। हमारी आधुनिक शिक्षा प्रणाली इतनी विकृत हो गई है जहाँ श्रम को हेय दृष्टि से देखा जाता है। बौध्दिक कार्य से श्रम को निम्न हेय समझने की इस भावना ने न केवल वर्ग संघर्ष एवं अनेक सामाजिक अंतर्विरोधों को जन्म दिया है, वरन् समाज को ही विभक्त एवं विशृंखलित कर दिया है। आज हम अपने ही समाज के लोगों को बौध्दिकता की दृष्टि से अपने से निम्न समझने लगे हैं। श्रम के प्रति हमारी इस अरुचि एवं निरक्षर लोगों के प्रति हमारी उदासीनता के कारण जहाँ एक ओर समाज अध:पतित एवं अशक्त बनता है वहीं उसकी उत्पादन शक्ति भी घट गई है। शिक्षित वर्ग इतना आत्म विस्मृत हो गया है कि वह शरीर से काम लेने की अपेक्षा मशीनोंपर ही निर्भर हो गया है। इसका दुष्परिणाम यह निकला है कि वह शरीर से अशक्त हो गया है। आज गाँव का जो व्यक्ति शहरमें शिक्षा प्राप्त करने आता है, वह शहर की रंगीनियों में इतना खो जाता है कि अपने गाँव को बिलकुल भूल जाता है। शिक्षा समाप्त कर लेने पर वह अपने पैतृक धंधे को न अपनाकर कोई आरामदायक नौकरी तलाश करता है। चूंकि इस प्रकार की नौकरी वह किसी कल कारखाने में ही पा सकता है और अधिकतर औद्योगिक विकास शहरों में ही हुआ है अत: वह गाँव में पुन: लौटने की अपेक्षा शहर में ही नौकरी की तलाश में भटकता रहता है। इस प्रकार ग्रामीण जीवन विशृंखलित हो जाता है। गांधीजी की दृष्टि में शरीर श्रम आवश्यक है। वे श्रम को हेय नहीं पवित्र मानते हैं। वे श्रम के व्दारा अर्जित जीविका को ही सच्ची जीविका मानते हैं। अत: प्रत्येक व्यक्ति को श्रमव्दारा ही जीविका अर्जित करने की सलाह देते हैं। उन्होंने कहा भी है "बुध्दि से सेवा करो, रुपया कमाओ, जीविका के लिये, पेट भरने के लिये शरीर श्रम का कोई काम करो। श्रम भी उत्पादक हो, अनुत्पादक नहीं। उत्पादक श्रम ही कल्याणप्रद है।"[१] उन्होंने कायिक श्रम पर इसलिये भी जोर दिया था कि यदि शरीरश्रम का बोझ समाज के किसी वर्ग विशेष पर ही

---

१. प्रयोगों का एक जीवन : श्री रामनाथ सुमन – पृ. ५५

डाल दिया गया तब उत्पादक श्रम के प्रति लोगों में वितृष्णा का भाव पैदा हो जाएगा। दूसरे बैठे बैठे खाते रहने पर मनुष्य का स्वास्थ्य भी ठीक नहीं रहता। उसकी पाचन शक्ति धीरे धीरे खराब हो जाती है और वह अनेक प्रकार की पेट की बीमारियोंका शिकार हो जाता है। अतः प्रत्येक व्यक्ति के लिये शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से भी शरीर श्रम नितांत अनिवार्य है। "केवल बौध्दिक श्रम करते रहने तथा कृत्रिम व्यायामादि एवं दवा आदि खाकर शरीर को निरोग रखने की अपेक्षा यह अधिक वैज्ञानिक होगा कि हम अपने और अपने परिवार के लिये नियमित रूप से थोड़ा थोड़ा शरीर श्रम किया करें। यह श्रम वास्तव में देखा जाय तो खेती ही है, पर आज की जो स्थिति है, उसमें सब उसे नहीं कर सकते। इसलिये खेती का आदर्श ध्यान में रखकर लोग उसके विकल्प में दूसरे श्रम जैसे कताई, बुनाई, बढ़ईगिरी, लुहारी इत्यादि भी कर सकते हैं। फिर सबको स्वयं अपना भंगी होना चाहिए। यदि सब कोई इस प्रकार के कामों में थोड़ा थोड़ा हाथ बंटाये तो शरीर भी स्वस्थ रहेगा और समाज में श्रम की प्रतिष्ठा और मानव की समानता भी बनी रहेगी।"[1] इस प्रकार कायिक श्रम व्दारा गांधीजी ऊँचनीच के भेदभाव को मिटाकर मानव को समानता के स्तर पर प्रतिष्ठित करना चाहते है। उनका श्रम सिध्दांत उनके वर्णाश्रम धर्म के बिलकुल विपरीत है। वर्णाश्रम धर्म के अंतर्गत इस बात पर विशेष बल दिया जाता है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपना पैतृक धंधा ही अपनाना चाहिए, ऐसा करने से वह आजीविका तो अर्जित करता ही है साथ ही वह दूसरों की रोटी छीनने के पाप से भी बचा रहता है। यह मान भी लिया जाय कि प्रत्येक व्यक्ति अपने पैतृक धंधों व्दारा ही अपनी आजीविका कमायेगा, तब उस स्थिति में जिसका पैतृक धंधा शरीर श्रम न होकर बुध्दि या ज्ञान से संबंधित होगा, वह भला शरीरश्रम के सिध्दांत का पालन कैसे कर सकेगा? इस स्थिति में या तो वर्णाश्रम धर्म का पालन करते हुए उसे अपनी रोटी बौध्दिक श्रम व्दारा ही कमानी होगी या रोटी के लिये श्रम सिध्दांत को अपनाते हुए वर्णाश्रम का खंडन करना पड़ेगा। इस विरोधाभास को निर्मूल करने के लिये हम केवल यही तर्क दे सकते हैं कि गांधीजी वर्णाश्रम धर्म को तो स्वीकार करते हैं लेकिन साथ ही साथ व्यक्ति के नैतिक अनुशासन के लिये शरीर श्रम की महत्ता को भी स्वीकार करते हैं।

1. महात्मा गांधी का दर्शन - ले. डॉ. धीरेन्द्र मोहन दत्त पृ. ८४

शरीर श्रम संबंधी विचार करते हुए गांधीजी ने भिखारियों की समस्या पर भी विचार किया है। गांधीजी किसी तंदुरस्त आदमी को मुफ्त खाना देने के पक्ष में नहीं है। उनका मानना है कि स्वस्थ आदमी को मुफ्त खाना देने से ही सुस्ती, बेकारी, और अपराधों को प्रोत्साहन मिलता है। इस प्रकार के दान से देश के भौतिक या आध्यात्मिक धन में वृध्दि नहीं होती। इस से दाता के मन में पुण्यात्मा होने का अहं पैदा हो जाता है। इसलिये वे चाहते हैं कि दानी लोग ऐसी संस्थाएँ खोले जहाँ उनके लिये काम करनेवाले स्त्री पुरूषों को स्वास्थ्य प्रद और स्वच्छ भोजन मिल सके। किंतु गांधीजी ने लंगड़ों एवँ विकलांगो को थोड़ी बहुत छूट दी है। इस प्रकार के शारीरिक स्म से असमर्थ विकलांगों का पोषण राज्य को करना चाहिए। इस प्रकार श्रम निष्ठासे ही सामाजिक एवं आर्थिक समानता का मार्ग प्रशस्त होता है तथा स्वावलंबन की भावना का विकास होता है।

## स्वदेशी की गरिमा :

गांधीजी ने अपने स्वदेशी सिध्दांत के अंतर्गत खादी को अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है। स्वदेशी सिध्दांत का पालन करनेवाले व्यक्ति को हाथ की कती बुनी खादी का ही इस्तेमाल करना चाहिए। किंतु स्वदेशी सिध्दांत केवल कपड़ों के इस्तेमाल तक ही सीमित नहीं, वरन् इसके अंतर्गत इस बात पर भी विशेष जोर दिया जाता है कि जहाँ तक संभव हो देश में बननेवाली अर्थात स्थानीय चीजों को ही हमें व्यवहार में लाना चाहिए, जिससे एक तो हमारे देश की पूंजी विदेश में एकत्रित होने से बच जाएगी, वहीं हम स्थानीय चीजों के उपयोग व्दारा अपने मृतप्राय हो चले उद्योगधंधों को भी नवजीवन प्रदान कर सकेंगे, इस प्रकार गृह उधोगों के फिर से चल निकलने पर बेकारी की समस्या हल होगी। स्थानीय चीजों का इस्तेमाल करते हुए हमें इस बात का ध्यान रखना होगा कि स्वदेशी माल चाहे विदेशी माल से घटिया किस्म का हो या महंगा, तो भी उसे अपनाना होगा और यथा संभव उसकी कमियों को दूर करते हुए उस वस्तु के स्तर को सुधारना होगा। स्वदेशी सिध्दांत के मूल में गांधीजी का लक्ष्य हमारे गृह उधोगों को पुनर्जीवित कर उसकी रक्षा और समृध्दि के

लिये प्रयत्न करना है। किंतु स्वदेशी सिध्दांत का यह अर्थ कदापि नहीं कि अन्य देशों के प्रति हम व्देष की भावना रखें। उदाहरण के लिये यदि विदेश से कोई ऐसी वस्तु हमें उपलब्ध होती हो, जिसका उत्पादन हमारे देश में बहुत ही जटिल एवं खर्चीला हो और जिससे समय का अत्याधिक अपव्यय होता हो, तो ऐसी वस्तु को स्वदेशी सिध्दांत के लिये देश में उत्पादन करना और उस विदेशी वस्तु को अस्वीकार करना एक जघन्य पाप है और स्वदेशी सिध्दांत के विरूध्द है। गांधीजीने कहा भी है "स्वदेशी का सच्चा पुजारी विदेश के प्रति कभी कोई दुर्भावना नहीं रखेगा, वह दुनिया में किसी के प्रति विरोध की भावना से प्रेरित नहीं होगा। स्वदेशीवाद घृणा का पंथ नहीं है। यह नि:स्वार्थ सेवा का सिध्दांत है, जिसकी जड़ें पवित्रतम अहिंसा अर्थात् प्रेम में है।"[१]

## सामाजिक पक्ष :

गांधीदर्शन के अंतर्गत सामाजिक अभ्युत्थान को अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है। गांधीजी भारतीय समाज में आमूल परिवर्तन कर अहिंसक समाज की स्थापना करना चाहते थे। अहिंसक समाज की स्थापना के मूल में गांधीजी की भावना यही थी कि समाज में व्याप्त हिंसा की भावना को समाप्त न किया गया तो समाज में घृणा, भय, प्रतिहिंसा आदि दुर्भावनाओं का प्रसार होगा तथा इन दुर्भावनाओं के प्रसार से समाज की शांति भंग होगी और समाज में अंधाधुन्ध दुर्व्यवस्था फैल जायगी। अत: गांधीजी ऐसे अहिंसक समाज की स्थापना के लिये प्रयत्नशील थे जिसमें स्त्री पुरूषों को समान अधिकार प्राप्त हों, जहाँ सभी व्देष को भूलकर परस्पर प्रेमभाव से रहें, जहाँ साम्प्रदायिकता और अस्पृश्यता जैसी कुरीतियाँ न हों।

## वर्णाश्रम धर्म :

समाज की सुव्यवस्था के लिये गांधीजी ने प्राचीन वर्णाश्रम धर्म का आश्रय लिया। गांधीजीने आधुनिक जाति प्रथा के रूप की कड़ी आलोचना करते हुए उसमें परिवर्तन लाने का प्रयत्न किया है। जिस प्रकार शारीरिक

---

१. यंग इण्डिया : १८-६-१९३१ - गांधीजी

हो, क्या उस पर पैतृक धंधे को जबर्दस्ती आरोपित करना उचित होगा ? इस विषय में गांधीजी का मत है कि इस नियम के अंतर्गत किसी व्यक्ति की प्रवृत्ति और अभिरुचि के विरूध्द पैतृक धंधे को जबर्दस्ती आरोपित करने का प्रश्न ही नहीं उठता। "वर्णाश्रमधर्म पृथ्वी पर प्रत्येक व्यक्ति के जीवन मिशन को अभिव्यक्त करता है। उसे हर बार इसलिये जन्म नहीं लेना है कि वह बार बार संपत्ति संग्रह के लिये नये नये मार्ग और साधन खोतजा फिरे और जीविकोपार्जन के नये नये मार्ग अपनाये। इसके विपरीत उसका जन्म इसलिये होता है कि वह अपने निर्माता को जानने के उद्देश्य से अपनी शक्ति के प्रत्येक अणु का भरपूर उपयोग कर सके।"[1] इस प्रकार गांधीजी का वर्णाश्रम धर्म मनुष्य को कठोर जातीय बंधनों से मुक्त कर सबको समानता के स्तर पर प्रतिष्ठित करना चाहता है तथा आर्थिक वैषम्य को मिटाता है। इस प्रकार जब सब लोग समानता के स्तर पर आयेंगे तब ईर्ष्या, द्वेष, हिंसा आदि दुर्भावनाओं से रहित अहिंसक समाज का निर्माण संभव हो सकेगा।

आश्रम व्यवस्था :

गांधीजी आश्रम व्यवस्था को वर्णाश्रम धर्म का सहायक मानते हैं। उन्होंने भी हिन्दू धर्म के अनुरूप ही चार आश्रम या अवस्थाओं को माना है। ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम और सन्यास्ताश्रम। प्रत्येक हिन्दू को अपने जीवन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये इनसे गुजरना पड़ता है। "सब वर्ण के लोगों को सब आश्रमों का अधिकार है। चारों आश्रम एक दूसरे के साथ ऐसे जुड़े हुए हैं कि एक के बिना दूसरे का पालन हो ही नहीं सकता।"[2]

अस्पृश्यता निवारण तथा हरिजनोध्दार :

गांधीजी अस्पृश्यता को अभिशाप मानते हुए कहते हैं - "अस्पृश्यता हिंदूधर्म का अंग नहीं है, बल्कि उसमें घुसी हुई सड़न है, वहम है, पाप है और उसको दूर करना हर एक हिन्दू का धर्म है, उसका परम कर्तव्य है।"[3]

---

१. धी पोलीटीकल फीलासाफी ऑफ महात्मा गांधी : गोपीनाथ धवन - पृ. ९९
२. गांधी विचार दोहन : किशोरलाल मशरूवाला - पृ. ४०
३. गांधी विचार दोहन - किशोरलाल मशरूवाला - पृ. ४४

स्पष्ट है कि यह अस्पृश्यता किसी धर्म की नहीं, मनुष्य की ही नीच भावना की देन है। "हमारे धर्मका कोई भी ग्रंथ उठालो, कहीं भी अस्पृश्यता का समर्थन नहीं मिलेगा। हाँ, शास्त्रों में अस्पृश्यता का विधान जरूर है, किंतु वहाँ यह अस्पृश्यता स्वच्छता के एक अंग के रूप में ही स्वीकृत की गई है। अस्पृश्यता के नाम पर हरिजनों पर जो अत्याचार किये जा रहे हैं, उसे जितनी जल्दी निर्मूल कर दिया जाय, उतना ही हिन्दूधर्म भारत और शायद समग्र मानव जाति के लिये कल्याणकारी सिध्द होगा।"[1] गांधीजी को अस्पृश्यों के प्रति पूर्ण सहानुभूति है। उनका कहना है कि यदि अस्पृश्यों को इसलिये अस्पृश्य माना जाता है कि वे जानवरों को मारते हैं और मांस, रक्त, हड्डियाँ और मैला आदि छूते हैं तब तो नर्स और डाक्टर को भी अस्पृश्य मानना चाहिए। इसी तरह मुसलमान, ईसाई तथा तथाकथित ऊँचे वर्ग के उन हिन्दुओं को भी अस्पृश्य मानना चाहिए, जो आहार अथवा बलि के लिये जानवरों की हत्या करते हैं। गांधीजी हरिजनों को केवल उस समय तक अस्पृश्य मानते हैं, जब तक कि वे कार्य करने के उपरांत नहा-धो कर स्वच्छ वस्त्र धारण नहीं कर लेते। स्नानोपरांत वे उन्हें भी अन्य सभी लोगों की तरह स्पृश्य मानते हैं।

साम्प्रदायिक एकता :

गांधीजीका मानना था कि जब तक देश के विभिन्न संप्रदाय एकता के पवित्र सूत्र में नहीं बंध जाते, तब तक स्वराज्य प्राप्त करना और उसे हमेशा टिकाये रखना सर्वथा असंभव है। इसीलिये उन्होंने साम्प्रदायिक वैमनस्य को मिटाने का भरसक प्रयत्न किया। "साम्प्रदायिक एकता के लिये सबमें आजादी से रोटी बेटी व्यवहार होना ही चाहिए। अथवा उनके भिन्न भिन्न धर्मों और संस्कृतियों के भेद मिट जाने चाहिए और किसी एक ही धर्म की अथवा किसी भी धर्मका आधार न रखनेवाली संस्कृति निर्माण होनी चाहिए। यह आवश्यक नहीं है। इष्ट भी नहीं है। प्रत्येक जाति को अपनी अपनी विशेषता कायम

---

१. हरिजन : ११-२-१९३३ - सं. गांधीजी ।

रखते हुए एकता करनी चाहिए। परंतु इस एकता की स्थापना के लिये बड़े संप्रदायों का छोटे संप्रदायों को अभय देना जरूरी है। बड़े संप्रदायों को चाहिए कि छोटे संप्रदायों को इस बात का इतमीनान दिला दें कि बड़े संप्रदायोंका रूख और विरद ऐसा होगा कि अगर न्याय और सार्वजनिक हित के विरूध्द न हों, तो उनके धर्म, भाषा, साहित्य, मजहबी कानून, रस्म-रिवाज शिक्षा, अर्थ प्राप्ति के अवसर आदि विषयों में उन्हें हानि न सहनी पड़ेगी।"[१] इस प्रकार सभी संप्रदायों के एक हो जानेपर आपसी झगड़ों का अंत होगा और इन झगडों की ओर से हमारा ध्यान हटते ही हमें स्वतंत्रता प्राप्ति का अवसर मिल सकेगा और हम प्रयत्न करके स्वराज्य हासिल कर उसे सुरक्षित रख सकेंगे।

नारी-उध्दार तथा नारी का कार्यक्षेत्र :

गांधीजी स्त्रियों की पददलित अवस्था से पीड़ित थे अत: उन्होंने स्त्रियों को इस दलित अवस्था से उबारने का प्रयत्न किया। उन्होंने स्त्री जाति को उद्बोधित करते हुए कहा -"पुरूषों की भूख मिटाने का साधन न बनी रहकर अब वे स्वयं ही अपना सम्मान प्रकट करें। देश के काम में वे दृढ़तापूर्वक आगे बढ़ें, साहस के साथ विपत्तियों का सामना करें, जिम्मेदारियाँ ले।"[२] गांधीजी की दृष्टि में नारी का स्थान महत्त्वपूर्ण रहा है। उनकी दृष्टि में "नारी पुरूष से हीन नहीं है, बल्कि वह पुरूष की अपेक्षा महान ही है। आत्मत्याग की अपनी शक्ति से, चुपचाप यंत्रणा सहने की अपनी क्षमता से, विनय से, विश्वास से, ज्ञान से। नारी की बोधशक्ति में वह प्रज्ञा है जो पुरूष के अहंकार में नहीं है।"[३] गांधीजी नारी को अबला न मानकर लोकहित करनेवाली अनन्य शक्ति के रूप में देखते हैं। उनके अनुसार -"स्त्री-जाति में छिपी हुई अपार शक्ति उसकी विव्दत्ता अथवा शरीरबल की बदौलत नहीं है, इसका कारण उसके भीतर भरी हुई उत्कट श्रध्दा, भावना का वेग और अत्यंत त्याग-शक्ति है।"[४] अपनी इसी शक्ति के कारण नारी अबला नहीं सबला है,

---

१. गांधी विचार दोहन : किशोरलाल मशरूवाला : पृ.८०
२. महात्मा गांधी : जीवन और दर्शन : ले. रोमांरोला : अनु. प्रफुल्लचंद्र ओझा पृ. ५७-५८
३. महात्मा गांधी : जीवन और दर्शन : ले. रोमांरोला = अनु. प्रफुल्लचंद्र ओझा पृ. ५८
४. गांधी विचार दोहन : किशोरलाल मशरूवाला - पृ.४३

वह पुरूषों से किसी कदर कम नहीं। नारी और पुरूष का स्थान समान है। "स्त्री पुरूष की साथिन है, जिसकी बौध्दिक क्षमताएँ पुरूष की वैसी ही क्षमताओं से किसी तरह कम नहीं है। पुरूष की प्रवृत्तियों में, उन प्रवृत्तियों के प्रत्येक अंग और उपांग में भाग लेने का उसे अधिकार है और आज़ादी तथा स्वाधीनता का उसे उतना ही अधिकार है, जितना पुरूष को। जिस तरह पुरूष अपनी प्रवृत्ति के क्षेत्र में सर्वोच्य स्थान का अधिकारी माना गया है उसी तरह स्त्री भी अपनी प्रवृत्ति के क्षेत्र में मानी जानी चाहिए। स्त्रियाँ पढ़ना लिखना सीखें और उसके परिणाम स्वरूप यह स्थिति आये ऐसा नहीं होना चाहिए। वह तो हमारी सामाजिक व्यवस्था की सहज अवस्था ही होनी चाहिए। महज एक दूषित रूढ़ि और रिवाज के कारण बिलकुल ही मुर्ख और नालायक पुरूष भी स्त्रियों से बड़े माने जाते हैं, यद्यपि वे इस बड़प्पन के पात्र नहीं होते हैं और न वह उन्हें मिलना चाहिए। हमारे कई आंदोलनों की प्रगति हमारे स्त्री समाज की पिछ़डी हुई हालत के कारण बीच में ही रूक जाती है। इसी तरह हमारे किये हुए काम का जैसा और जितना फल हमें मिलना चाहिए, वैसा और उतना नहीं मिलता। हमारी दशा उस कंजूस व्यापारी जैसी है जो अपने व्यापार में पर्याप्त पूंजी नहीं लगाता और इसलिये नुकसान उठाता है।"[१] स्पष्ट है कि गांधीजी को यह सहय नहीं कि दूषित रूढ़ि रिवाजों के कारण स्त्रियों को बहुत कुछ मूकरहकर बर्दाश्त करना पड़े और उसकी प्रगति अवरूध्द हो जाय। वे तो नारी की पददलित अवस्था से ऊँचा उठाकर पुरूषों के समान स्तर पर प्रतिष्ठित करने के इच्छुक थे।

गांधीजी का विचार था कि किसी भी स्त्री की इच्छा के विरूध्द उसका शीलभंग नहीं किया जा सकता। जब उसके मन पर ड़र छा जाता है, तभी वह इस अत्याचार की शिकार बनती है। स्त्री यदि अपने शरीरबल या हथियार पर भरोसा कर आक्रमणकारी का सामना करे भी तो न कभी न कभी शक्ति चुक जाने पर वह हार ही जाएगी। अत: स्त्रियों को व्यर्थ में अपने शरीरबल या हथियार पर भरोसा न करते हुए अपने इच्छा बल को जगाये रखना

---

१. मेरे सपनों का भारत : गांधीजी - सं. सिध्दराज ढड्ढा : 'स्त्री शक्ति' लेख से पृ. ९१

चाहिए तथा आक्रमण के समय हिंसा अहिंसा के विचार में न उलझकर उस समय जो उपाय उसे उचित जान पड़े उसीसे अपनी आत्मरक्षा करनी चाहिए। भगवान ने उसे दाँत और नाखून दिये ही हैं। आवश्यकता पड़ने पर उसे अपने दाँत एवं नाखून का पूरी ताकत से उपयोग करना चाहिए और जरूरत पड़ने पर प्रयत्न करते हुए मरने को भी तैयार रहना चाहिए। जो स्त्री मृत्युभय पर विजय पा लेगी, वह न केवल अपनी ही रक्षा कर सकेगी, बल्कि अपने प्राणों का बलिदान करके दूसरों की रक्षा भी कर सकेगी।

वेश्या उध्दार :

गांधीजी ने नारी के उध्दार के संदर्भ में वेश्यावृत्ति की समस्या पर विचार करते हुए उसके समाधान के लिये अपने कुछ महत्त्वपूर्ण सुझाव प्रस्तुत किये हैं। वे वेश्यावृत्ति को हमारे समाज का कलंक मानते हैं। उनका कहना है कि यदि हम नारी जाति का उध्दार करना चाहते हैं तो यह आवश्यक है कि पहले वेश्याओं का उध्दार किया जाय। जब तक कुछ असाधारण स्त्रियाँ इन पतित बहनों के उध्दार का कार्य अपने हाथों में नहीं लेंगी, तब तक वेश्यावृत्ति की समस्या का समाधान न हो सकेगा।

परदा प्रथा का विरोध :

गांधीजी परदा प्रथा को स्त्रियों की उन्नति में बाधक मानते थे। उनका विचार था कि परदे की ओट में चेहरा छुपाकर रखने से ही पवित्रता नहीं पनपती, और न वह बाहर से लादी जा सकती है, वह तो भीतर से ही पैदा होती है। परदे के व्दारा पवित्रता की रक्षा संभव नहीं।

विधवा विवाह समर्थन :

गांधीजी विधवाओं की दयनीय अवस्था से क्षुब्ध थे। अत: वे नारी को इस करुणाजनक स्थिति से उबारने का प्रयत्न करते रहे। हिन्दू विधवा के प्रति उनके मनमें आदरभाव था। अत: उन्होंने हिन्दू विधवा के संबंध में लिखा – "हिन्दू विधवा त्याग और पवित्रता की मूर्ति है, वह माता की तरह सबके लिये

पूज्य है। उसे अशुभ समझनेवाला हिन्दू समाज महान् अपराध करता है। शुभ कार्यों में उसकी उपस्थिति और आशीर्वाद प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। पवित्र विधवा को समाज का भूषण समझकर उसके सम्मान और प्रतिष्ठा की रक्षा की जानी चाहिए।"[१] विधवा त्याग की मूर्ति है किंतु इस कारण उससे जबर्दस्ती वैधव्य का पालन कराना उचित नहीं है क्योंकि विधवाके न चाहते हुए भी यदि उससे त्याग का आदर्श जबर्दस्ती मनवाया जाय तो जहाँ उस त्याग से उसमें रहनेवाली दिव्यता का विनाश होगा वहीं वह त्याग उसे पूजनीय और आदर्श रूप बनाने की अपेक्षा दया का पात्र बना देगा। अत: हमारे समाज में विधुर के समान ही विवाह के लिये इच्छुक विधवाओं को भी पुनर्विवाह की छूट दी जानी चाहिए। वैधव्य पालन केवल उसी स्त्री के लिये उचित एवं आदर्शपूर्ण है जिसने स्वेच्छा से उसे समझबूझकर अपनाया हो। ऐसी विधवाओं का वैधव्य पालन उनके जीवन को सुंदर एवं गौरवशाली बना देता है तथा धार्मिक दृष्टि से उसे उच्चता प्रदान करता है। धर्म या रिवाज के नाम पर जबर्दस्ती लादा हुआ वैधव्य स्त्री के लिये असहय बोझ है तथा समाज के लिये भी अहितकर है। यह एक ऐसा पापाचार है, जिसके कारण घरकी पवित्रता नष्ट हो जाती है और वह धर्म से च्युत हो जाता है। अत: गांधीजी के अनुसार "यदि हम पावित्र्य की और हिन्दूधर्म की रक्षा करना चाहते हैं, तो इस जबर्दस्ती लादेजानेवाले वैधव्य के विष से हमें मुक्त होना ही होगा। इस सुधार की शुरूआत उन लोगों को करनी चाहिए, जिनके यहाँ बाल विधवाएँ हैं, उन्हें साहसपूर्वक इन बाल विधवाओं को योग्य लड़कों से विवाह करा देना चाहिए। बाल विधवाओं के इस विवाह को मैं पुनर्विवाह का नाम देना नहीं चाहता, क्योंकि मैं मानता हूँ कि उनका विवाह तो कभी हुआ ही नहीं था।"[२]

## अंतरजातीय विवाह का समर्थन :

गांधीजी चाहते है कि अंतर्जातीय विवाह को पूरा पूरा प्रोत्साहन दिया जाय जिससे जातिभेद तथा उससे उत्पन्न होनेवाली समस्या का समाधान स्वत: ही हो जाए।

---

१. गांधी विचार दोहन : किशोरलाल मशरूवाला - पृ. ४७
२. यंग इण्डिया :- ५-८-२६ - सं. गांधीजी.

दहेज प्रथा का विरोध :

विवाह वास्तव में समानता के स्तर पर दो जीवों का मिलन हैं, किंतु आजकल हमारे समाज में दहेज के नाम पर विवाह एक प्रकार का व्यापार बन गया है। आर्थिक रूप से समर्थ लोग दहेज देकर अपनी लड़कियों का विवाह अच्छे घर में कर देते हैं, किंतु असमर्थ एवं असहाय गरीब लड़कियों को या तो कुंआरा ही रहना पड़ता है या विवाहोपरांत ससुराल वाले उसे परेशान करते हैं। यहाँ तक कि आजकल तो दहेज न लेकर जानेवाली लड़कियों को मौत के घाट भी उतार दिया जाता है। इस प्रकार गरीब व सामान्य वर्ग के लिये दहेज अभिशाप बन गया है, जिसे समय रहते नष्ट करना जरूरी है। जब तक यह प्रथा समाज में रहेगी, सफल विवाह संभव नहीं हो सकेंगे। यही कारण है कि गांधीजी ने इस प्रथा को नष्ट करने का आग्रह प्रकट किया।

शराब बंदी और मादक वस्तुओं का निषेध :

गांधीजी शराब को सामाजिक बुराई मानते थे क्योंकि शराब और अन्य मादक द्रव्यों के सेवन से मनुष्य अपनी आध्यात्मिक उच्चता से अध:पतित होकर इतना आत्म विस्मृत हो जाता है कि कुछ क्षण के लिये वह उचित-अनुचित, पाप-पुण्य तथा माँ और स्त्री का भेद भी भूल जाता है। अत: गांधीजी की दृष्टि में शराब और मादक द्रव्य ही चोरी और व्यभिचार इन दोनों बुराइयों के कारण है। शराब और मादक द्रव्यों से होनेवाली हानि कई अंशों में मलेरिया आदि बीमारियों से होनेवाली हानि की अपेक्षा असंख्य गुनी ज्यादा है, क्योंकि बीमारी से तो केवल शारीरिक क्षति ही होती है, किंतु शराब के सेवन से शरीर और आत्मा दोनों का हनन होता है। अत: प्रत्येक राष्ट्र को शराब पर प्रतिबंध लगाना चाहिए।

आर्थिक पक्ष :

गांधीजी समाज की वर्तमान विषमतापूर्ण अर्थव्यवस्था से असंतुष्ट थे। वे चाहते थे कि न केवल भारत की बल्कि सारी दुनिया की अर्थव्यवस्था ऐसी होनी चाहिए, जिसमें किसी को भी अन्न एवं वस्त्र का अभाव न सहना पड़े।

हरएक को इतना काम आवश्य मिलना चाहिए कि वह अपने खाने पहनने की जरूरतें आसानी से पूरी कर सके। यह आदर्श तभी कार्यान्वित हो सकता है जब जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओं के उत्पादन के साधन जनता के हाथमें रहे। ये साधन प्रत्येक मनुष्य को समान रूप से उपलब्ध होने चाहिए। गांधीजी सबकी समान प्रगति के लिये प्रयत्नशील थे। अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये उन्होंने रचनात्मक कार्यक्रम के अंतर्गत आर्थिक समानता और समान अर्थ वितरण पर विशेष बल दिया। आर्थिक समानता से उनका अभिप्राय यह था कि पूंजी और मजदूरी के बीच के झगड़े हमेंशा के लिये मिटाकर राष्ट्र की सम्पत्ति का बड़ा भाग पूंजीपतियों के हाथ में एकत्रित न होने देकर उसे समान रूप से वितरित करना है। जब तक मुठ्ठीभर धनवानों और करोड़ों भूखे रहनेवालों के बीच अंतर बना रहेगा, तब तक अहिंसा की बुनियाद पर चलनेवाली राज्य व्यवस्था कामयाब नहीं हो सकती। उनका मानना है कि यदि धनवान लोग अपने धन को और उसके कारण मिलनेवाली सत्ता को खुद राजी खुशी से छोड़कर सबके कल्याण के लिये सबके साथ मिलकर चलने को तैयार नहीं होंगे तो हमारे देश में हिंसक और खुंखार क्रांति हुए बिना न रहेगी। गांधीजी ने इस हिंसक क्रांति से बचने का एक उपाय बताया है – वह है – अर्थ के समान वितरण का रास्ता। आर्थिक समानता के लिये यह जरूरी है कि पूंजीपति धन के प्रति अपने अत्यधिक मोह को त्याग दे और मजदूर को भी उस धन का समान रूप से अधिकारी समझे। वह उस धन में से केवल अपनी आवश्यकता भर को ले और शेष धन को समाज के जरुरतमंदों के बीच समान रूप से वितरित कर दे। किंतु आधुनिक परिप्रेक्ष्य में देखने पर यह सिध्दांत थोड़ा अनुचित प्रतीत होता है, क्योंकि आज मनुष्य धन को ही ईश्वर मान बैठा है, धन जुटाने के चक्कर में वह अपनी नैतिकता को भी खो बैठा है, इस स्थिति में यह अपेक्षा करना कि पूंजिपति अपनी राजीखुशी से संपत्ति का त्याग करेगा, यह विचार अनुचित जान पड़ता है। किंतु हमारा विषय उनके सिध्दांत की आधुनिक परिप्रेक्ष्य में आलोचना करना नहीं, वरन् उनके मूलभूत सिध्दांतों का विवेचन करना ही है, अत: अब यह देखना जरूरी है कि उन्होंने अर्थ के समान वितरण का कौनसा मार्ग

सुझाया है ? उनके अनुसार अर्थ के सम वितरण के लिये यह जरूरी है कि मनुष्य अपनी धन कमाने की शक्ति को नियंत्रण में रखे। वह ईमानदारी पूर्वक धन कमाने का आग्रह रखे। अपनी सामान्य आवश्यकता की वस्तुओं अपनाकर शेष वस्तु का त्याग करें व अपने जीवन को हर तरह से संयमी बनावे। इस प्रकार अपने जीवन में संभवित सुधार लाने के बाद वह अपने नाते रिश्तेदार एवं पड़ोसियों में भी समानता के आदर्शों का प्रचार करे। गांधीजी आर्थिक समानता के पक्षपाती अवश्य रहे हैं, किंतु उन्हें यह मान्य नहीं कि राज्य किसी की वैयक्तिक संपत्ति का बलात् अपहरण करे। इस संबंध में उनका कहना है "यदि राज्य ने पूंजीवाद को हिंसा के व्दारा दबाने की कोशिश की तो वह खुद ही हिंसा के जाल में फंस जायगा और फिर कभी भी अहिंसा का विकास नहीं कर सकेगा।"[1] आर्थिक संगठन के लिये गांधीजी गृह उद्योगों के विकास को आवश्यक मानते हैं। अत: वे चाहते थे कि जनकल्याण के लिये चलाये जानेवाले व्यक्तिगत उद्योगों और व्यापारों को भरपूर प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए तथा व्यक्तिगत उद्योगों के शोषण पर राज्य को रोक थाम करनी चाहिए। आर्थिक संगठन के लिये अपने आर्थिक अभ्युदय के अंतर्गत गांधीजी ने सर्वोदय, मशीनों का विरोध, खादी और चरखा, ग्रामीण उद्योग धंधों के प्रचार व गो-रक्षा पर अधिक बल दिया है।

सर्वोदय की भावना :

सर्वोदय का अर्थ है सब का सब प्रकार से उदय। पूंजीवाद के कारण गरीबों में गहरा असंतोष छाया हुआ है, उन्हें संघर्षपूर्ण जीवन व्यतीत करना पड़ रहा है, इस स्थिति का निराकरण तब तक संभव नहीं, जब तक कि लोग सर्वोदय के लक्ष्य से परिचित न हो जायें। सर्वोदय का लक्ष्य है-अमीरों एवं गरीबों की इन्सानियत को बचाना और बढाना जिस तरह अमीरी बाँट लेने से कम हो जाएगी, उसी प्रकार गरीबी भी बाँट लेने से कम होगी ही। अपने भावात्मक अर्थ में सर्वोदय शब्द का अर्थ बहुत व्यापक है। दादा धर्माधिकारी ने कहा है - "सर्वोदय से तात्पर्य है - सबका उदय, सब का उत्कर्ष, सब का विकास। सर्वोदय

१. मेरे सपनों का भारत : गांधीजी : संग्राहक : आर. के. प्रभु : पृ. ७२

शब्द भले ही नया हो, किंतु उसका अर्थ सबका जीवन साथ साथ संपन्न हो, इतना ही नहीं है। जीवन का अर्थ है विकास, अभ्युदय या उन्नति, सबका सह विकास हो इसलिये सर्वोदय। परंतु प्राचीन समय में अभ्युदय शब्द का प्रयोग ऐतिहासिक वैभव के अर्थ तक ही सीमित था, इसलिये गांधीजी ने केवल उदय शब्द का प्रयोग किया - एक साथ समान रूप से सबका उदय हो, यही सर्वोदय का उद्देश्य है।"[1] इस प्रकार सर्वोदय के भावात्मक अर्थ में भेदभाव एवं शोषण का अभाव है। गांधीजी का सर्वोदय सिध्दांत लोकहित की कल्याणकारी भावना पर आधारित है।

<u>उद्योगवाद एक अभिशाप</u> :

गांधीजी उद्योगवाद को अभिशाप मानते हुए उसे असंख्य पापों और अनर्थों की जड़ बताते हैं। उद्योगवाद के लिये काफी मात्रा में कच्चामाल और तैयार माल को बेचने के लिये बड़ा बाजार चाहिए। इन दोनों ही चीजों के लिये बहुधा हमें विदेशों पर ही निर्भर रहना पड़ता है। हमारी मजबूरी का फायदा उठाकर वे एक चीज के हमसे दूगुने दाम वसूल करते हैं और इस तरह हमारे देश की पूंजी विदेश में एकत्रित होती जाती है और हमारा शोषण होता है। दूसरे उद्योगवाद ने पूंजीवाद को भी जन्म दिया है, जिससे मालिक-मजदूर के बीच का भेद निरंतर बढ़ता जा रहा है, अमीर दिन-ब-दिन अमीर होता जा रहा है और श्रमिक वर्ग शोषण की चक्की में पिसता जा रहा है। इसका एक और दुष्परिणाम यह आता है कि कुछ नगरों में ही बड़े बड़े उद्योगों का विकास होने के कारण लोग गाँव छोड़कर घनी आबादी वाले शहरों में आ बसते हैं, इससे ग्रामीण जीवन विश्रृंखलित हो जाता है। औद्योगिकरण के विकास के कारण हमारे गृह उद्योग भी मृतप्राय हो गये हैं। मानव जीवन यंत्रवत् और नीरस बन गया है। इस शोषित एवं संघर्षपूर्ण जीवन से तंग आकर अपने व्यक्तित्व से टूटा मनुष्य अपनी स्थिति को भूलाने के लिये शराब, जुआ, आदि बुरी आदतों को भी गले लगाकर अपना सर्वनाश कर रहा है। इसका एक दुष्परिणाम यह भी हुआ है कि उसने जनसंख्या के बड़े भाग को एक सीमित क्षेत्र में रहने के लिये बाध्य कर

---

१. सर्वोदय दर्शन : सर्वसेवासंघ : ले. दादा धर्माधिकारी - पृ. १६

दिया है, जहाँ उनके नियमित एवं नियंत्रित अप्राकृतिक जीवन में जलवायु, प्रकाश, तापमान सबकुछ अप्राकृतिक ही है। उस व्यस्त कोलाहलपूर्ण वातावरण ने मनुष्य की चिर शांति छीन ली है। माना कि मशीन ने खतरे से पूर्ण शारीर श्रम के स्थान पर सुरक्षापूर्ण साधन प्रस्तुत किये हैं, किंतु इसने करोड़ों लोगों को बेकार और बेघर बनाकर उनकी रोटी व पौरुष को भी छीना है तथा उन्हें सत्वहीन एवं अस्तित्वहीन बना दिया है। इसीकारण गांधीजीने औद्योगीकरण को अभिशाप मानते हुए मशीनों का विरोध किया है। किंतु इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि गांधीजी यंत्र के बिलकुल खिलाफ थे। उन्होंने श्रम को हलका करनेवाले यंत्र को अवश्य स्वीकार किया है। उन्होंने केवल उन्हीं यंत्रों का विरोध किया है, जिनके कारण बेरोजगारी पैदा होती है तथा अमीर गरीबों का और एक देश दूसरे देश का शोषण करता है तथा जिनके आधीन रह कर मनुष्य इतना आलसी हो जाता है कि वह शारीरिक श्रम के महत्त्व को ही भूल जाता है। उन्होंने लिखा भी है "मैं सभी यंत्रों के खिलाफ नहीं हूँ, लेकिन इसके उपयोग को सीमित अवश्य करना चाहता हूँ, क्योंकि मेरे विचार से यंत्र मनुष्य के लिये है, मनुष्य यंत्र के लिये नहीं।"[१] वे मारक यंत्रों के एकदम खिलाफ हैं। लेकिन वे ऐसे सादे औजारों, साधनों या यंत्रों का स्वागत करते हैं जो व्यक्ति की मेहनत को बचाये और झोपड़ियों में रहनेवाले करोड़ों लोगों का बोझ कम करे। इसीलिये उन्होंने यंत्रों का विरोध करते हुए भी चरखे के महत्त्व को स्वीकार किया है तथा चरखे के पक्ष में कुछ महत्त्वपूर्ण तर्क प्रस्तुत करते हुए कहा है चरखा उन लोगों को [आसानी से] आर्थिक सहायता पहुँचाता है, जिनको फुर्सत के समय में और कोई काम नहीं व जिन्हें थोड़े बहुत पैसों की आवश्यकता होती है। चरखा चलाने के लिये किसी विशेष यांत्रिक ज्ञान की आवश्यकता नहीं होती। कताई कला आसानी से सीखी जा सकती है। दूसरे कताई के लिये अधिक पूंजी की आवश्यकता नहीं रहती, चरखा आसानी से व सस्ते दामों में तैयार किया जा सकता है। इससे अकाल या अतिवृष्टि के समय आर्थिक दृष्टि से तत्कालिक राहत मिलती है। खादी के व्यवहार से देश की पूंजी देश में ही रहती है।

---

१. यंग इण्डिया : १३-११-१९२४ - गांधजी।

इसके व्दारा धन का समान वितरण भी संभव हो सकता है। चरखा उद्योग से लोगों में सहयोग की भावना पैदा होती है मानव मानव के बीच प्रेम बढ़ता है, सम्पत्ति के समान वितरण के कारण सामाजिक शांति स्थापित होती है और लोगों में संतोष व्याप्त हो जाता है। यह संतोष परिवार भावना को जन्म देता है। इस प्रकार हस्तोद्योग के विकसित होनेपर परिवार की जड़ें मजबूत होती हैं, परिवार के समस्त लोग उसी उद्योग के विभिन्न कार्यों में संलग्न हो जाते हैं, जिससे उन्हें एक दूसरे के अनुकूल होकर रहने की आदत पड़ती है। चरखा आर्थिक समानता एवं सामाजिक एकता के साथ साथ विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास का भी महत्वपूर्ण साधन है। इन्हीं सब कारणों को ध्यान में रखकर गांधीजी ने अपने रचनात्मक कार्यक्रम के अंतर्गत चरखे को महत्व प्रदान किया।

गांधीजी के रचनात्मक कार्यक्रम में खादी का महत्व :

खादी भारत की समस्त जनता की एकता, आर्थिक स्वतंत्रता और समानता का प्रतीक है। खादी के मूल में दीन एवं पददलित मानव जाति के प्रति अथाह सहानुभूति एवं प्रेम की भावना अंतर्निहित है। खादी के व्यवहार ने अमीर और गरीब को वेश और सज्जा में बहुत कुछ एक कर दिया है यह कृत्रिम जीवन के विरुध्द विद्रोह का भाव मनमें उत्पन्न करती है। पूंजीवाद को निर्मूल करने का यह उपयुक्त साधन है। इसने स्वावलंबन की वृत्ति को जगाया है, जोकि गांधी दर्शन का एक महत्वपूर्ण पहलू है।

ग्रामीण उद्योग धंधों का प्रचार :

गांधीजी गृह उद्योगों के साथ साथ देश के बड़े उद्योगों को भी छोटे छोटे भागों में उनके स्वावलम्बी रूप में चलाने के पक्षपाती थे। इस प्रकार छोटे छोटे उद्योगों को उत्तेजना मिलने से बड़े बड़े नगरों का जन्म नहीं होता और जो वर्तमान हैं, उनकी ओर धन का प्रवाह रूक जाता है। सम्पूर्ण देश में फैले छोटे छोटे गृह उद्योगों के कारण धन का वितरण भी बड़े क्षेत्रों में और इस ढ़ंग से होता है कि पूंजी एक जगह बहुत बड़े पैमाने पर एकत्रित नहीं हो पाती। इससे

पूंजीवाद के जिस विशाल रूप को हम देखते हैं, उसका अंत हो जाता है, छोटे छोटे अपने में संतुष्ट स्वावलम्बी और सुखी समूह ग्रामों के रूप में बन जाते हैं।

गो-रक्षा :

गोरक्षा के अंतर्गत गांधीजी ने समस्त मूक प्राणियों के रक्षण की बात कही है। गांधीजी के अनुसार - "गाय की रक्षा करना ईश्वर की सारी मूक सृष्टि की रक्षा करना है।....गो-रक्षा हिन्दू धर्म की दुनिया को दी हुई कीमती भेंट है और हिन्दू धर्म तभी तक रहेगा, जब तक गाय की रक्षा करनेवाले हिन्दू हैं।.... हिन्दुओं की परीक्षा तिलक करने, स्वर शुध्द मंत्र पढ़ने, तीर्थ यात्राएँ करने या जात बिरादरी के छोटे छोटे नियमों को कट्टरता से पालने से नहीं होगी, बल्कि गाय को बचाने की उनकी शक्ति से ही होगी।"[१] केवल गो वध पर प्रतिबंध लगाने से ही गो-रक्षा का कर्तव्य पूरा नहीं हो जाता, बल्कि गायों को पालकर उनके स्वास्थ्य की सुरक्षा करना, उनकी प्रतिदिन की सफाई की व्यवस्था करना तथा उसके खाने पीने और रहने की व्यवस्था करना भी इसके अंतर्गत अपेक्षित है।

राजनीतिक तथा राष्ट्रीय पक्ष :

गांधीजी की राजनीति नैतिक और अध्यात्मिक मूल्यों पर आधारित थी। वे चाहते थे कि राजनीति का साध्य मानवतावादी सच्चा धर्म हो। मानव की सच्ची सेवा के निमित्त ही उन्होंने राजनीति में प्रवेश किया था।

सत्याग्रह :

सत्याग्रह की व्याख्या :

प्रचलित भाषा में सत्याग्रह अहिंसात्मक प्रतिरोध के साथ समीकृत किया जाता है, लेकिन सत्याग्रह केवल अहिंसक प्रतिरोध के विभिन्न रूपों असहयोग, सविनय अवज्ञा, उपवास इत्यादि तक ही सीमित नहीं है। सत्याग्रह तो अहिंसात्मक प्रतिरोध से कहीं अधिक व्यापक है। सविनय कानून भंग को वे

१. यंग इण्डिया : ६-१०-२१ - सं. गांधीजी.

सत्याग्रह का अंगमात्र मानते हैं। उनके अनुसार हरिजन कार्य, चरखा चलाना, सत्य, ब्रह्मचर्य आदि सभी सत्याग्रह के अंग है। सत्याग्रह का शाब्दिक अर्थ सत्य को साक्षी मानकर किसी वस्तु के लिये आग्रह करना अथवा सत्य और अहिंसा से उत्पन्न होनेवाला बल है। सत्याग्रह आत्मशक्ति या प्रेमशक्ति का पर्याय है। वह कष्ट सहन की ऐसी प्रक्रिया है जिसमें सत्याग्रही प्रतिपक्षी को कष्ट न पहुँचाकर स्वयं कष्ट सहन कर सत्य की रक्षा करता है। "सत्याग्रह आत्मशक्ति या प्रेम शक्ति का पर्यायवाची है, इस प्रकार सत्याग्रह अहिंसक साधनों द्वारा सच्चे ध्येय की साधना है। सत्याग्रह प्रतिपक्षी को कष्ट देकर नहीं, वरन् स्वयं कष्ट सहन कर सत्य की रक्षा करता है।"[१] संक्षेप में सत्याग्रह सत्य की साधना की तपस्या है तथा सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, अस्तेय, अभय, अस्पृश्यता निवारण, कायिक-श्रम, सर्वधर्मसमानत्व, नम्रता, स्वदेशी आदि एकादशव्रत ही सत्याग्रह के अंग है। सविनय कानून भंग - नम्रता, सत्य, अहिंसा और अभयत्व के अंतर्गत प्रकारांतर से आ जाता है अतः इसे पृथक् स्थान नहीं दिया जा सकता।

वस्तुतः 'अहिंसक प्रतिकार' ही सत्याग्रह है। किंतु अहिंसक प्रतिकार दुर्बलता का द्योतक है और उसमें प्रतिपक्षी के लिये आंतरिक घृणा का भाव भी ध्वनित होता था, और उससे अंत में हिंसा के फूट निकलने की संभावना थी, अतः गांधीजी ने उसका नाम सत्याग्रह रखा। सत्याग्रह से किसी भी प्रकार के त्याग के मूल्य पर सत्य और न्याय पर आरूढ़ रहने की शक्ति और संकल्प का बोध होता है। सत्याग्रह के अंतर्गत सत्य के साथ प्रेमशक्ति के महत्त्व को भी स्वीकार किया गया है, क्योंकि सत्यप्राप्ति अहिंसक मार्ग से ही संभव है और अहिंसा प्रेम का ही परिपक्व रूप है। इस प्रकार सत्याग्रह शब्द प्रेम की भावात्मक शक्ति को प्रकट करता है। सविनय अवज्ञा, असहयोग, हड़ताल, अनशन, और उपवास आदि सत्याग्रह के विभिन्न रूप हैं, जिनका विभिन्न परिरिस्थितियों में अन्याय के प्रतिकार के लिये प्रयोग किया जा सकता है।

---

१. स्पीचेज एण्ड राइटिंग्स ऑफ महात्मा गांधी - पृ. ५०१

सत्याग्रह का उद्देश्य :

सत्याग्रह का उद्देश्य सत्य और अहिंसा द्वारा अन्यायी के हृदय को परिवर्तन करना है। इसके लिये यह आवश्यक है कि सत्याग्रही हिंसा का त्याग कर आत्मशुध्दि करे। यदि अन्यायी अहिंसक आंदलन को समाप्त करने के लिये हिंसक साधनों का भी सहारा लेता है, तो भी सत्याग्रही को हिंसक न बनते हुए अपने प्राण तक न्यौछावर करने को तैयार रहना चाहिए। इस दृष्टि से सत्याग्रह घृणा, दुर्भावना आदि बुराईयों से परे की चीज है। इसका उद्देश्य आत्मा को जगाना, दिल को पिघलाना और विरोधी की आँखें खोलकर उसे सत्य के दर्शन करवाना एवं उसका हृदय परिवर्तन करना है।

सत्याग्रह का औचित्य :

गांधीजी के अनुसार सत्याग्रह यों ही नहीं छेड़ देना चाहिए। उनका कहना है "चूंकि सत्याग्रह सीधी कार्यवाही की सबसे प्रभावशाली पध्दति है, इसलिये सत्याग्रही सत्याग्रह आरंभ करने से पूर्व सभी अन्य उपायों को आजमा लेता है। वह शांत और उव्दिग्न भाव से जनता के साथ साथ अन्यायी के सामने भी अपनी जायज माँग को रखता है, उसे सोचने समझने का मौका देता है और यदि इसके बाद भी अन्यायी अन्याय को दूर करने पर सहमत नहीं होता है, तब अंत में सत्याग्रही अहिंसात्मक आंदोलन छेड़ने की पूर्व सूचना देकर आंदोलन छेड़ता है। किंतु आंदोलन के दौरान वह अपने प्रतिपक्षी को अपमानित करने की कोशिश नहीं करता। वह तो प्रेम से समझा बुझाकर अन्यायी के मस्तिष्क एवं हृदय को आश्वस्त कर उसका हृदय परिवर्तन करता है।"[१]

अहिंसक आंदोलन के लाभ :

सत्याग्रह पध्दति में अहिंसा को प्रतिष्ठित करने का प्रमुख कारण यह है कि हिंसा के व्दारा किसी भी समस्या का हल खोजना असंभव है क्योंकि हिंसात्मक संघर्ष से आपसी वैमनस्य और प्रतिहिंसा उत्पन्न होने की पूरी संभावना रहती है। हिंसा से व्यर्थ का खून-खराबा होता है, अशांति और अव्यवस्था

१. यंग इण्डिया : २०-१०-२७ - गांधीजी.

फैलती है। अत: सत्याग्रह में हिंसा, घृणा, व्देष आदि को निषिध्द माना गया है। सत्याग्रह में तो अहिंसा के व्दारा प्रतिपक्षी के ह्रदय में प्रेम उत्पन्न किया जाता है, जिससे उसकी आत्मा निष्कलुष हो जाती है। सत्याग्रह के प्रयोग से प्रतिपक्षी के मन पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है। सत्याग्रही आत्मकष्ट सहन की नीति को अपनाकर जब प्रतिपक्षी के प्रति हिंसक एवं घृणापूर्ण व्यवहार न करते हुए प्रेमपूर्ण व्यवहार करता है, तब उसका यह अहिंसक व्यवहार प्रतिपक्षी के मनमें ग्लानि एवं लज्जा का भाव उत्पन्न करता है, उसे अपने हिंसक व्यवहार पर ग्लानि होती है और उसका यह पश्चाताप उसके ह्रदय को परिवर्तित कर उसमें प्रेम एंव सहानुभूति की भावना जागृत करता है। उसे यह अनुभव हो जाता है कि जिस हिंसक समरनीति को वह शक्तिशाली समझता था, वह कमजोर एवं बेकार थी, वास्तव में अहिंसक मार्ग ही समस्या के समाधान का उचित एवं सबल उपाय है।

<u>असहयोग आंदोलन</u> :

गांधीजी का सत्याग्रह राजनीतिक क्षेत्र में असहयोग के नाम से विख्यात है। जनता की भावनाओं के प्रतिकूल चलकर यदि सरकार जनता के साथ अनैतिक एवं अत्याचारपूर्ण व्यवहार करती है, तो जनता का यह अधिकार है कि वह सरकार के साथ असहयोग करे। असहयोग का लक्ष्य है - विरोधी को इस बात का अनुभव कराना कि वह अपनी योजना सत्याग्रही की सहायता के बिना कार्यान्वित नहीं कर सकता। इसलिये सत्य, अहिंसा आदि नैतिक साधनों व्दारा असहयोग यहाँ तक बढ़ाया जा सकता है, जिससे विपक्षी की वह योजना या काम रूक जाय। किंतु इसमें जनता का सहयोग नितांत आवश्यक है क्योंकि जनता के सहयोग के बिना सत्याग्रह सफल नहीं हो सकता और न वह व्यापक रूप ही धारण कर सकता है।

<u>सविनय अवज्ञा</u> :

यह असहयोग का उपसंहार या उसका उग्रतम रूप है। इन दोनों का लक्ष्य उस अनैतिक एवं अन्यायपूर्ण सरकार को पंगु बनाना है जो जनता की इच्छा

के विरुध्द कार्य करती है, जनता की इच्छा की अवज्ञा करती है। सविनय अवज्ञा का अर्थ जनता के उन कानूनोंका भंग सविनय अथात् अहिंसात्मक मार्ग से करना है, जो अनैतिक हैं। अत: इसके लिये अहंशून्य व्यक्तित्व, विवेक और विनयशीलता की आवश्यकता होती है। सविनय अवज्ञा जोखिम से भरा अस्त्र है अत: उसका प्रयोग अत्यंत सावधानीपूर्वक करना चाहिए। सविनय अवज्ञा दो प्रकार की हो सकती है - किसी विशेष अन्यायकारी हुक्म या कानून की, केवल उसी हुक्म या कानून को रद्द कराने भर के लिये और असहयोग के ही खास कदम की भाँति, अन्याय, अधर्म किये अथवा निर्दोष या तटस्थ जनता को अनुचित असुविधा पहुँचाये बिना तोड़े जा सकनेवाले, आमतौर से तमाम कानूनों की है।"[1] किंतु सविनय अवज्ञा केवल उसी स्थिति में उचित है, जबकि उसका हेतु जनहित से संबध्द हो। "दुष्ट हेतु से की गई अवज्ञा अंतरात्मा की आवाज को दबा देने का प्रयत्न है।"[2] अवज्ञा सविनय तभी मानी जाएगी, जब उसमें सच्चाई होगी, वह आदरपूर्ण होगी और नियंत्रित होगी, दंभपूर्ण चुनौती की भावना से मुक्त होगी, तथा उसके पीछे कोई दुर्भावना या घृणा की भावना न होगी। असहयोग हड़ताल, सामाजिक एवं आर्थिक बहिष्कार, घरना तथा उपवास के माध्यम से किया जा सकता है।

स्वतंत्रता संग्राम :

गांधीजी की दृष्टि में राजनीतिक आजादी का मतलब यही है कि मुल्क पर ब्रिटिश फौजों की किसी भी शक्ल में कोई हुकूमत न रहे। वे विदेशी दासता से पूर्ण मुक्ति को ही स्वतंत्रता मानते हैं। किंतु गांधीजी के लिये स्वतंत्रता केवल राजनीतिक तथ्य मात्र न थी, बल्कि वह एक सामाजिक सच्चाई भी थी। वे विदेशी दासता से भारत को मुक्त कराना तो चाहते थे, किंतु साथ ही वे सामाजिक कुरीतियों और साम्प्रदायिक झगड़ों से भी समाज को मुक्ति दिलाने के लिये प्रयत्नशील थे, क्योंकि उनका मानना था कि यदि राष्ट्र विदेशी शासन से मुक्ति पा लेता है किंतु समाज में अंतर्निहित बुराईयों से बध्दमूल रहता है तो इससे राष्ट्र की उन्नति का मार्ग अवरुध्द हो जाता है। चूंकि वे

---

१. गांधी विचार दोहन : किशोरलाल मशरूवाला : पृ. ६२
२. मेरे सपनों का भारत : गांधीजी : पृ. ८७-८८

भारत को सच्चे अर्थों में मुक्ति दिलाना चाहते थे। अत: उन्होंने अपने रचनात्मक कार्यक्रम के अंतर्गत चरखा, अस्पृश्यता निवारण और साम्प्रदायिक एकता को अत्यधिक महत्त्व प्रदान किया। आज़ादी का मतलब बिना किसी बाहरी दबाव के अपने ऊपर काबू रखना, अनुशासन पालना और राजीख़ुशी से उन कानूनों पर अमल करना, जिन्हें पूरे हिन्दुस्तान ने अपने चुने हुए नेताओं के जरिये बनाया है।

रामराज्य अथवा स्वराज्य :

रामराज्य का अर्थ ऐसा राज्य है जहाँ सबकी समान रूप से प्रगति हो, सभी सुखी एवं संतुष्ट हो और जिस राज्य में शोषण एवं अत्याचार के स्थान पर प्रेमपूर्ण वातावरण हो। "इसका अर्थ है धर्म का राज्य अथवा न्याय और प्रेम का राज्य, अथवा अहिंसक स्वराज्य या जनता का स्वराज्य।"[१] जनताके स्वराज्य का अर्थ है प्रत्येक व्यक्ति के स्वराज्य से उत्पन्न जनसत्तात्मक राज्य। किंतु इसकी स्थापना तभी संभव है जबकि प्रत्येक व्यक्ति अपने नागरिक धर्म का ठीक से निर्वाह करे। "रामराज्य का आदर्श है कम से कम राज्य। उसमें लोग अपना बहुत कुछ व्यवहार परस्पर मिलकर अपने आप चलायेंगे। कानून गढ़-गढ़कर अधिकारियों द्वारा दण्ड के भय से उनका पालन करना, उनमें लगभग नहीं होगा। उसमें सुधार करने के लिये जनता धारासभा या अधिकारियों की राह देखती बैठी न रहेगी, बल्कि लोगों के चलाये सुधारों के अनुकूल पड़नेवाले प्रकार से कानून में सुधार करने के लिये व्यवस्थापिका सभाएं और व्यवस्था करने के लिये अधिकारी यत्न करेंगे। उसमें खेती का धंधा बढ़ती पर होगा। और दूसरे सब धंधे उसके सहारे टिकेंगे। अन्न और वस्त्र के विषय में लोग स्वाधीन होंगे और गाय बैलों की भी समृध्द दशा होने से आदर्श गो-रक्षा की व्यवस्था होगी। उसमें सब धर्म, सब वर्ण और सब वर्ग समान भाव से मिलझुल कर रहेंगे और धार्मिक झगड़े या क्षुद्र स्पर्धा, अथवा विरोधी - स्वार्थ सरीखी चीज न होगी यह एक ही देश या जनता के लिये नहीं, बल्कि सारी दुनिया के उत्तम राज्य का आदर्श है।"[२]

---

१. गांधी विचार दोहन : किशोरलाल मशरूवाला - पृ. ७६
२. गांधी विचार दोहन : किशोरलाल मशरूवाला - पृ. ७७-७८

स्वराज्य को बनाये रखने के लिये सबल आंतरिक शक्ति और कठिन परिस्थितियों से जूझने का साहस चाहिए। उसकी रक्षा के लिये यह अपेक्षित है कि जनता अपने व्यक्तिगत स्वार्थ को छोड़कर देश की भलाई के लिये प्रयत्नशील बने। अत: अहिंसक स्वराज्य पर गांधीजी ने जोर दिया है।

राष्ट्रवाद और अंतर्राष्ट्रीयता :

गांधीजी का राष्ट्रवाद उनके विश्वप्रेम, विश्व मानवता और मानव जाति की सेवा का ही अभिन्न अंग है। उनके राष्ट्रवाद में अहंकार का दूसरी जातियों को सिरपर चढ़ाकर जबर्दस्ती बैठाने का, अपने राष्ट्रीय स्वार्थ के लिये दूसरे दुर्बल देशों का यथेच्छा उपयोग करने का भाव नहीं है। उसमें जहाँ एक ओर भारत के पीड़ित एवं दीन दुखियों के उध्दार का भाव था, वहीं दूसरी ओर भारत को विश्व भ्रातृत्व का, विश्व सेवा का एक सबल अस्त्र बनाने की आकांक्षा थी। चूंकि उनका राष्ट्रवाद विश्वमानवता पर आधारित है अत: उसमें अपने राष्ट्र के साथ साथ अन्य राष्ट्रों की उन्नति का भाव भी अंतर्निहित है। उन्होंने कहा भी है -"मेरा देश प्रेम कोई बहिष्कारशील वस्तु नहीं है, बल्कि अतिशय व्यापक वस्तु है, और मैं उस देशप्रेम को वर्ज्य मानता हूँ जो दूसरे राष्ट्रों को तकलीफ देकर या उनका शोषण करके अपने देश को उठाना चाहता है। देशप्रेम की मेरी कल्पना यह है कि वह हमेशा बिना किसी अपवाद के हरएक स्थिति में मानव जाति के विशालतम हित के साथ सुसंगत होना चाहिए।"[१]

चूंकि गांधीजी का राष्ट्रप्रेम उनके मानव प्रेम से ही उद्बुध्द होता है अत: उन्होंने भारत की स्वतंत्रता के लिये कभी किसी जाति या वर्ग के प्रति घृणा नहीं रखी। उन्होंने सबके प्रति प्रेम और करुणा का भाव रखने का आदेश दिया है।

-----------

१. यंग इण्डिया : ४-४-२९

## कला, साहित्य और संस्कृति पक्ष :

### कला संबंधी विचार :

कला जीवन में कल्याण को मूर्त करती है और अंत: सौंदर्य को लेकर चलती है। जो कला आत्मा को आत्मदर्शन की शिक्षा नहीं देती वह कला नहीं है। गांधीजीने कला की दो कसौटियाँ निर्धारित की हैं - एक वह अंतर्मुखी हो, दूसरी आत्मदर्शन में सहायक हो। इस प्रकार की सच्ची कला न केवल कलाकार के हृदय को अननुभूत आनंद से भर देती है, वरन् वह व्यक्ति भोग्य ही न रहकर सर्वभोग्य बन कर जनसाधारण के सूने दु:ख कातर जीवन में भी आनंद का संचार करती है। यह कला न केवल मानव जीवन को सुखी बनाती है बल्कि वह उसे ऊँचा उठाने के साथ साथ उज्वलता भी प्रदान करती है। यह निर्दोष सर्वभोग्य कला मनुष्य के अध्यात्मिक विकास में भी सहायक होती है। "कला की सार्थकता जीवन के निमित्त ही हो सकती है और जीवन समस्त कलाओं से श्रेष्ठ है।"[१] वे कला के कल्याणकारी एवं मंगलकारी रूप को ही स्वीकार करते हैं। हीन प्रवृत्ति यों को उत्तेजित करने तथा भोग की इच्छा प्रदीप्त करनेवाली कला उनकी दृष्टि में अश्लील एवं निरुपयोगी है। "कला का लक्ष्य मनुष्य को आदर्शों की ओर अग्रसर करना, ऊँचा उठाना है। जब कलाकार अनिर्वचनीय सत्य को मूर्तिमान करता है तभी सच्ची कला का जन्म होता है।"[२]

## साहित्य संबंधी विचार :

कला के समान साहित्य की कसौटी भी वे उसकी उपयोगिता को ही मानते हैं। उनकी दृष्टि में "वही काव्य और साहित्य चिरंजीवी रहेगा जिसे लोग सुगमता से पा सकेंगे, जिसे वे आसानी से पचा सकेंगे।"[३] जनता की हीन प्रवृत्तियों को उत्तेजित करनेवाले अश्लील साहित्य और कला को वे किसी भी प्रकार से कला और साहित्य नहीं मानते। इस विषय में उनके विचार स्वयं

---

१. गांधी विचारधारा का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव : डॉ. अरविन्द जोशी पृ. ९४
२. गांधी विचारधारा का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव : डॉ. अरविन्द्र जोशी - पृ. ९४
३. नवजीवन : २३-११-२४, पृ. १२०

उन्हीं के शब्दों में देखिये - "कोई देश और कोई भाषा गन्दे साहित्य से मुक्त नहीं है। जब तक स्वार्थी और व्यभिचारी लोग दुनिया में रहेंगे तब तक गंदा साहित्य प्रकट करनेवाले और पढ़नेवाले भी रहेंगे। लेकिन जब ऐसे साहित्य का प्रचार प्रतिष्ठित माने जानेवाले अखबारों व्दारा होता है, और उसका प्रचार कला या सेवा के नाम पर किया जाता है, तब वह भयंकर स्वरूप धारण करता है।"[१] स्पष्ट है कि वे ऐसे साहित्य को ही उत्कृष्ट एवं उपयोगी साहित्य मानते हैं, जो मानव को ऊपर उठाने में व उसकी ज्ञान वृध्दि में सहायक हो।

संस्कृति :

गांधीजी के अनुसार पहले हमें अपनी संस्कृति को आत्मसात् करना चाहिए, तत्पश्चात् दूसरी संस्कृतियों के विषय में सोचना चाहिए। वे भारतीय संस्कृति के महानतम रूप से अभिभूत हैं। उनकी दृष्टि में भारतीय संस्कृति में कुछ ऐसी अमूल्य निधियाँ हैं जो अन्य संस्कृतियों में दुर्लभ हैं। किंतु हमने अपनी संस्कृति में अंतर्निहित इन निधियों को ठीक से पहचाना नहीं है। वस्तुत: हमें अपनी संस्कृति को पहचानकर उसका अध्ययन करने के स्थान पर उसका तिरस्कार करना ही सिखाया गया है। किंतु गांधीजी का धर्म उन्हें प्रेरित करता है कि वे अपनी संस्कृति को ग्रहण कर उसके अनुसार चले। स्पष्टत: गांधीजी ने भारतीय संस्कृति के पुनर्निमाण में अमूल्य सहयोग प्रदान किया है।

शिक्षा और माध्यम :

शिक्षाके क्षेत्र में गांधीजी ने सर्वथा नवीन एवं मौलिक विचार प्रकट किये है। उनकी दृष्टि में शिक्षा मानव के चरित्र निर्माण की वह प्रक्रिया है जो जीवनभर चलती है। व्यवहारिक रूप में यह जीवन में सदाचरण लाने, दूसरों के साथ अपने हितों का सामंजस्य करने अर्थात् अच्छा मानव और अच्छा नागरिक बनाने का एक साधन है। शिक्षा से मानव जीवन संस्कारपूर्ण बनता है। गांधीजी की दृष्टि में शिक्षा जीविकोपार्जन का साधन नहीं होना चाहिए। वे शिक्षा का उपयोग व्यक्तित्व विकास एवं ज्ञानवृध्दि के लिये ही करना चाहते हैं। जीविकोपार्जन के निमित्त

---

१. हिन्दी नवजीवन : ६-३-३० : पृ. २२८

उन्होंने शारीरश्रम के आदर्श पर ही जोर दिया है।

गांधीजी साक्षरतामात्र को शिक्षा नहीं मानते। उनका व्यक्तिगत अनुभव यह है कि असंख्य लोग ऐसे हैं, जो निरक्षर होते हुए भी संस्कार, ज्ञान और विवेक की दृष्टि से साक्षरों से कम नहीं है। उनमें कितने ही बहुतेरे साक्षरों से अधिक सुझबूझवाले एवं संस्कारवान है और उन्हें सूक्ष्म से सूक्ष्म बातों की भी गहरी पकड़ है। दूसरी ओर साक्षरों में विश्वविद्यालयों से निकले हुए बहु पण्डित वर्ग में बहुत बड़ी संख्या आज ऐसी है, जिनके संस्कार एवं आचरण, जिनकी सामाजिक प्रवृत्तियों को देखकर उनको शिक्षित कहने में संकोच होता है। वास्तव में संस्कारिता ही शिक्षा है। साक्षरता नैतिक उन्नयन में सहायक नहीं हो सकती।

गांधीजीने राष्ट्रीय शिक्षा के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए आधुनिक शिक्षा प्रणाली का प्रबलता के साथ विरोध किया है। आज जो शिक्षा प्रणाली है वह बहुत अधिक खर्चीली हो गयी है। जिससे सामान्य वर्ग के लोगों के लिये बच्चों को पढ़ाना एक प्रकार की समस्या है। आधुनिक शिक्षा जीवन को संस्कारिता से अभिसिंचित करने के स्थान पर असंतोष और असंयम, उच्छृंखलता एवं विद्रोह जैसी विस्फोटक भावनाओं को जन्म देनेवाली बन गई है। साथ ही आधुनिक शिक्षा के कारण हममें श्रम एवं सेवा के प्रति निष्ठा के स्थान पर उदासीनताका भाव ही उत्पन्न हुआ है। इन्हीं सब बुराईयों को लक्ष्य कर गांधीजी ने आधुनिक शिक्षा प्रणाली का विरोध किया था। उन्होंने राष्ट्रीय शिक्षा के लिये कुछ बातें आवश्यक बतलाई, जैसे वह स्वावलम्बी हो, उसमें शारीरश्रम की प्रतिष्ठा हो, वह पैतृक उद्योग धंधों व सम्पत्ति की विनाशक न होकर उसमें परिवर्तन एवं विकास लानेवाली हो, उससे सदाचरण एवं सादगी का विकास हो सके, प्रत्येक स्थिति में वह मातृभाषा के माध्यम से दी जानी चाहिए। तथा उसकी प्रेरकशक्ति जीविकोपार्जन न होकर समाज एवं मनुष्य की सेवाभावना ही होनी चाहिए। इस प्रकार की बुनियादी शिक्षा छात्रों को अपने पैतृक धंधों

से विलग नहीं करती, वरन् उन उद्योग धंधों में शास्त्रीय रूप से कुशल बनाती है, श्रमप्रधान उद्योगों के प्रति मनमें गौरव की भावना जगाती है।

गांधीजी के मत से "अंग्रजी शिक्षा ने ही शिक्षित भारतीयों को निर्बल और शक्तिहीन बना दिया है।"[१] अत: वे मातृभाषा में ही शिक्षा दिये जाने पर जोर देते हैं। इस प्रकार विदेशी भाषा के स्थान पर मातृभाषा में शिक्षण दिये जाने पर सभी लोग उसे आसानी से ग्रहण कर सकते हैं। "केवल ज्ञान संचय की दृष्टि से विदेशी भाषाओं का अध्ययन बहुत ही श्रेष्ठ है। किंतु शिक्षा का माध्यम मातृभाषा ही होना चाहिए।"[2]

राष्ट्रभाषा :-

गांधीजी के विचारानुसार राष्ट्रीय एकता के लिये यह आवश्यक है कि हम समान धर्म, संस्कृति, भाषा आदि का व्यवहार करें। जिस प्रकार भिन्न भिन्न धर्म और संप्रदायों को एकसूत्र में बांधनेवाली हमारी एक सामान्य संस्कृति है, उसी प्रकार हमें एक सामान्य भाषा की भी आवश्यकता है। देश की राष्ट्रभाषा के संबंध में अपने विचार प्रकट करते हुए गांधीजीने कहा है -"हिन्दुस्तानी अर्थात् हिन्दी और उर्दू दोनों के मिश्रण से बनी हुई हिन्दी देहली, लखनऊ, प्रयाग जैसे नगरों में आम लोगों व्दारा बोली जानेवाली भाषा हिन्दुस्तानकी भाषा है, शिक्षित मनुष्य को यह भाषा शुध्द रीति से बोलते, लिखते और पढ़ते आनी चाहिए।"[3] इस तरह गांधीजी अंग्रेजी के स्थानपर हिन्दी को ही राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार करते हैं।

उपसंहार :

गांधीदर्शन के मूलभूत सिध्दांतो का अध्ययन करने पर हमें यह ज्ञात होता है कि उनका संपूर्ण दर्शन अध्यात्म एवं उच्चकोटि की नैतिकता पर आधारित है, जिसमें सत्यान्वेषण को ही जीवन का चरम लक्ष्य बताया गया है एवं सत्यप्राप्ति के निमित्त ही अहिंसा, अपरिग्रह, अस्तेय, ब्रहमचर्य, अस्वाद

---

१. यंग-इण्डिया : २७-४-२१ गांधीजी
२. गांधी विचारधारा का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव : डॉ. अरविन्द जोशी पृ. ९७
३. मेरे सपनों का भारत : ले. गांधीजी - पृ. २१६

अभय, सर्वधर्म समभाव, अस्पृश्यता निवारण, कायिक श्रम, स्वदेशी आदि एकादश व्रतों के पालन का विधान है। इन व्रतों के पालन व्दारा ही मनुष्य आध्यात्मिक उच्चता को प्राप्त कर सत्य का साक्षात्कार करने में सक्षम होता है। इस प्रकार सत्य साधना गांधीदर्शन का मूल प्राण है एवं अहिंसा सत्य प्राप्ति का साधन है। किंतु गांधीजी अहिंसा को व्यक्तिगत साधना तक ही सीमित नहीं मानते। उनके अनुसार तो अहिंसा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उपयोगी सिध्द हो सकती है। यही कारण है कि उन्होंने अहिंसा को व्यक्तिगत साधना के संकुचित दायरे से निकालकर जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में, प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया। उन्होंने धार्मिक दृष्टि से तो अहिंसा के महत्त्व को स्वीकार किया ही, साथ ही सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में भी अहिंसा के महत्त्व को प्रदर्शित कर राजनीति को भी धर्म एवं नैतिकता से संबध्द कर दिया। उनकी दृष्टि में मानवता की सच्ची सेवा व्दारा ही मनुष्य ईश्वर तक पहुँच सकता है। वे मानव सेवा करना चाहते थे इसीलिये उन्होंने राजनीति में प्रवेश किया और राजनीतिक बुराइयों का निवारण कर उसे अहिंसात्मक धरातल पर प्रतिष्ठित किया। जिस समय भारत में घोर हिंसात्मक एवं असंतोष का वातावरण फैला हुआ था, उस समय लोगों को नैतिकता एवं अहिंसा का महत्त्व समझाते हुए उन्होंने सत्याग्रह का जो सबल एवं अनूठा अस्त्र जनता के हाथों में थमाया, उससे अद्भूत क्रांति हो गयी और लम्बी दासता के कारण सत्वहीन हुई जनता में दृढ़ आत्मविश्वास जागृत हो गया। आर्थिक क्षेत्र में उन्होंने औद्योगीकरण एवं पूंजीवाद का डटकर विरोध किया तथा ट्रस्टीशिप के सिध्दांत के व्दारा धन के समान वितरण की व्यवस्था कर आर्थिक समानता लाने का प्रयत्न किया। उनके विचारानुसार आर्थिक असमानता के कारण ही मनुष्य में असंतोष का भाव जागृत होता है और समाज में अशांति एवं अव्यवस्था फैलती है। इस आर्थिक असमानता को तभी मिटाया जा सकता है जब कि बड़े बड़े उद्योगों के स्थान पर छोटे छोटे गृह उद्योगों को प्रोत्साहन दिया जाय, जिससे गरीब एवं बेरोजगारों को भी रोजी रोटी मिल जाय। संक्षेप में, गांधीदर्शन मानवतावाद की उच्चतम भावना पर आधारित है।

------